बी० ए० (प्रतिष्ठा) तृतीय खण्ड

हिन्दी अष्टम पत्र

क्र०सं०	पाठ का नाम	इकाई संख्या	पृष्ठ
	कुछ-विचार		
1.	साहित्य का उद्देश्य	1	2
2.	जीवन में साहित्य का स्थान	2	7
3.	कहानी कला (भाग 1, 2, 3)	3	11
4.	उपन्यास	4	16
5.	उपन्यास का विषय	5	20
6.	उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी	6	24
	गबन		
7.	'गबन' उपन्यास में वर्णित मध्यवर्गीय समस्याएँ	1	28
8.	जालपा का चरित्र-चित्रण	2	32
9.	रमानाथ का चरित्र-चित्रण	3	36
	कर्मभूमि		
10.	प्रेमचंद की औपन्यासिक संरचना और 'कर्मभूमि'	1	40
11.	कर्मभूमि के प्रमुख पुरुष पात्रों का शील निरूपण	2	47
12.	कर्मभूमि के प्रमुख नारी-पात्र	3	54
	मानसरोवर		
13.	'अलग्योझा'	1	63
14.	ईदगाह	2	67
15.	'बड़े भाई साहब'	3	72
16.	नशा	4	76
17.	ठाकुर का कुआँ	5	81
18.	'घर जमाई'	6	86
19.	पूस की रात	7	91

कुछ विचार

साहित्य का उद्देश्य

पाठ-संरचना

1.0 पाठ-परिचय
1.1 साहित्य की परिभाषा
1.2 साहित्य का उद्देश्य
1.3 साहित्य मात्र सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं
1.4 साहित्य के आदर्श
1.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 पाठ-परिचय

कथा सम्राट प्रेमचंद ने न केवल उपन्यास लिखे, कहानियाँ लिखीं, वरन जीवन, जगत, साहित्य आदि के बारे में भी अपनी बेबाक राय जाहिर की। उनकी राय उनके संपादित पत्र 'हंस' की संपादकीय टिप्पणियों, समय-समय पर आयोजित सभा-गोष्ठियों में अभिव्यक्त होती रही है। उनके ऐसे विचारों को ही पुस्तकाकार दिया गया है, 'प्रेमचंद : कुछ विचार' उसी का सार्थक प्रयास है। 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक निबंध दरअसल 'प्रगतिशील लेखक संघ' के लखनऊ अधिवेशन में सभापति के आसन से दिया हुआ भाषण है। इसमें लेखक ने साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है।

1.1 साहित्य की परिभाषा

प्रेमचंद साहित्य की परिभाषा अपने ढंग से करते हैं। वास्तव में, किसी एक सत्य को लेकर साहित्य की परिभाषा सीमित नहीं की जा सकती। कलावाद से उनका साहित्य कोसों दूर है। कलावाद-काल्पनिक, श्लील-अश्लील की सीमाओं से मुक्त नितांत वैयक्तिक भावनाओं का प्रतीक है। प्रेमचंद ऐसे साहित्य के समर्थक नहीं थे। वे साहित्य का वास्तविक जीवन से अविच्छिन्न संबंध मानते हैं। जीवन साहित्य का आधार है, उससे कटकर साहित्य अपना महत्त्व खो देता है। वे लिखते

हैं–''साहित्य का आधार जीवन है, इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है।'' अब प्रश्न यह उठता है कि यदि साहित्य का आधार जीवन है। तो फिर जीवन का उद्देश्य क्या है? इसका सीधा उत्तर है कि जीवन का उद्देश्य आनंद है। मनुष्य जीवन पर्यन्त आनंद ही की खोज में पड़ा रहता है। लेकिन प्रेमचंद आनंद से अभिप्राय मात्र मनोरंजन अथवा भौतिक सुख-सुविधा की प्राप्ति से नहीं मानते। वे आनंद को मानसिक तृप्ति के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। इसीलिए साहित्य की परिभाषा जीवन, आनंद, सत्य और सुंदर के मेल से बनती है। जो कुछ सत्य और सुंदर है, वही साहित्य है। आनंद के साथ सत्य का घनिष्ठ संबंध है। वे लिखते हैं–''जहाँ मनुष्य अपने मौलिक, यथार्थ, अकृत्रिम रूप में है, वहीं आनंद है। आनंद कृत्रिमता और आडंबर से कोसों दूर भागता है।'' वे साहित्यकार को सत्य और सौंदर्य का आराधक मानते हैं और उसी की अभिव्यक्ति को साहित्य की संज्ञा देते हैं।

लेकिन जो कुछ लिख दिया जाय या अभिव्यक्त कर दिया जाय वह सबका सब साहित्य नहीं कहला सकता। साहित्य उसी रचना को कहा जाएगा, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गयी हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हों। प्रेमचंद के शब्दों में–''साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ की गयी हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।'' इतना ही नहीं वह मानव जीवन से संबंधित समस्त समस्याओं पर भी विचार करता है, उनको हल करने का प्रयत्न करता है। मात्र आलोचना जीवन के लिए पर्याप्त नहीं है।

1.2 साहित्य का उद्देश्य

साहित्य का उद्देश्य जीवन के आदर्श को उपस्थित करना है, जिसे पढ़कर हम जीवन में कदम-कदम पर आनेवाली कठिनाइयों का सामना कर सकें। अगर साहित्य में जीवन का सही रास्ता न मिले, तो ऐसे साहित्य से लाभ ही क्या? जीवन की आलोचना कीजिए, चाहे चित्र खींचिए, आर्ट के लिए लिखिए, चाहे ईश्वर के लिए, अगर उसमें हमें जीवन का अच्छा मार्ग नहीं मिलता तो उस रचना से हमारा कोई फायदा नहीं। साहित्य न चित्रण का नाम है, न अच्छे शब्दों को चुनकर सजा देने का, अलंकारों से वाणी को शोभायमान बना देने का। ऊँचे और पवित्र विचार ही साहित्य की जान हैं।

साहित्य के इस उद्देश्य पर विचार करने से यह ध्वनि निकलती है कि वह 'नीतिशास्त्र' का पर्यायवाची है। प्रेमचंद साहित्य और नीतिशास्त्र का लक्ष्य एक मानते हैं। अंतर केवल उपदेश की विधि का है। नीतिशास्त्र का सम्बन्ध मस्तिष्क की तर्कशक्ति से है, जबकि साहित्य का हृद्‌गत भावों से–''नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का एक लक्ष्य है, केवल उपदेश की विधि में अंतर है। नीतिशास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन में प्रभाव डालने का यत्न करता है। साहित्य ने अपने लिए मानसिक अवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन लिया है।''

इस प्रकार साहितय भावों के द्वारा मनुष्य को उसके मौलिक अकृत्रिम यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद के शब्दों में–''मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल-प्रपंच और परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है, उपदेशों से नहीं, नसीहतों से नहीं, भावों को स्पंदित करके, मन के कोमल तारों पर चोट लगाकर, प्रकृति से सामंजस्य उत्पन्न करके।'' वास्तव में साहित्य जाति के चरित्र निर्माण में बहुत बड़ा हिस्सा बँटाता है। साहत्यि के आदर्शों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए प्रेमचंद कहते हैं–''किसी राष्ट्र की सबसे मूल्यवान संपत्ति उसके साहित्यिक आदर्श होते हैं। व्यास और वाल्मीकि ने जिन आदर्शों की सृष्टि की, वह आज भी

भारत का सिर ऊँचा किये हुए है। राम अगर वाल्मीकि के साँचे में न ढलते तो राम न रहते। सीता भी उसी साँचे में ढलकर सीता हुई।'' तात्पर्य यह कि प्रेमचंद साहित्य को मानवीय उत्थान का साधन मानते हैं और अपने पूर्व की महान सांस्कृतिक विरासत पर गर्व करते हैं।

1.2 साहित्य मात्र सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं

प्रेमचंद ने सौंदर्य-प्रेम पर बहुत जोर दिया है, लेकिन यह सौंदर्य-भावना शारीरिक नहीं है। उसका स्वरूप मानसिक है जो हमारे हृदय का संस्कार करता है। संस्कार को देखकर हम मुग्ध होते हैं, उत्तेजित नहीं। वे लिखते हैं–''कलाकार हममें सौंदर्य की अनुभूत्ति उत्पन्न करता है और प्रेम की उष्णता।'' वे पुन: आगे लिखते हैं– '' जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य प्रेम न जाग्रत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं।''

प्रेमचंद मानते हैं कि साहित्यकार को उच्च भावों की अभिव्यक्ति करनी चाहिए–''साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप है और सामंजस्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, नाश नहीं। वह हमें वफादारी, सच्चाई, सहानुभूति, न्यायप्रियता और ममता के भावों की पुष्टि करता है। जहाँ ये भाव हैं, वहीं दृढ़ता है और जीवन है, जहाँ इनका अभाव है वहीं फूट, विरोध, स्वार्थपरता है, द्वेष, शत्रुता और मृत्यु है। साहित्य के संबंध में प्रेमचंद की क्या मान्यता थी, वे उसके लिए कौन-कौन से अनिवार्य तत्त्व मानते थे, इन पंक्तियों से स्पष्ट है–''हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं।''

1.4 साहित्यकार के आदर्श

प्रेमचंद साहित्यकार को सत्य और सौंदर्य का आराधक मानते हैं और उसी की अभिव्यक्ति को साहित्य की संज्ञा देते हैं। वे लिखते हैं–''मनुष्य ने जगत में जो कुछ सत्य और सुंदर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं।'' लेकिन सत्य की खोज केवल साहित्यकार ही नहीं करता, दार्शनिक और वैज्ञानिक भी करते हैं। प्रेमचंद सत्य से आत्मा का संबंध तीन प्रकार का बताते हैं, वे लिखते हैं कि जहाँ सत्य आनंद का स्रोत बन जाय, वहीं वह साहित्य की सीमा में आ जाता है।'' सत्य से आत्मा का संबंध तीन प्रकार का है। एक जिज्ञासा का सम्बन्ध है, दूसरा प्रयोजन का संबंध है और तीसरा आनंद का। जिज्ञासा का संबंध दर्शन का विषय है। प्रयोजन का संबंध विज्ञान का विषय है और साहित्य का विषय केवल आनंद का संबंध है। सत्य जहाँ आनंद का स्रोत बन जाता है, वहीं वह साहित्य हो जाता है।''

अत: साहित्य जीवन-आनंद के लिए सत्य की खोज और सुंदर की प्रतिष्ठा करता है। साहित्यकार जीवन की अवहेलना नहीं कर सकता। जब समाज में जीवन का स्तर गिरने लगता है तब साहित्यकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसकी आलोचना करे। साहित्य जीवन की व्याख्या है, आलोचना है। साहित्यकार बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुंदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है। साहित्य मानवीय इतिहास का सच्चा लेखा-जोखा है। युग का प्रतिबिंब

है। जीवन पर साहित्यकार से अधिक प्रकाश और कौन डाल सकता है? क्योंकि, वह अपनी रचना में देश-काल को प्रतिबिम्बित करता है।

प्रेमचंद मानते हैं कि साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है, क्योंकि मनोरंजन को एकमात्र उद्देश्य मानकर जो रचना की जाएगी, वह तत्त्वहीन होगी। कहानी-कला के संबंध में लिखते समय प्रेमचंद ने मनोरंजन की निकृष्टता के बारे में फिर लिखा है–"तत्त्वहीन कहानी से चाहे मनोरजन भले हो जाय, मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुंदर भावों को जाग्रत करने के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य चाहते हैं।"

मन बहलानेवाले साहित्यकारों पर व्यंग्य करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं–"साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है, वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है।, हमारी दृष्टि को फैलाता है, कम-से-कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिए।" एक सतही धारणा हमारे समाज में घर करके बैठ गयी है कि साहित्यकारों के लिए समाज में कोई स्थान नहीं। विकसित देशों साहित्यकार समाज का सम्मानित सदस्य माना जाता है। बड़े-बड़े अमीर और मंत्रिमंडल के सदस्य उससे मिलने में अपना गौरव समझते हैं। परंतु, हिन्दुस्तान में अभी मध्यकालीन स्थिति बनी हुई है। यदि साहित्यकारों ने अमीरों के याचक बनने को जीवन का सहारा बना लिया हो और उन आंदोलनों, हलचलों और क्रांतियों से बेखबर हो, जो समाज में हो रही हैं, अपनी ही दुनिया बनाकर उसमें रोता और हँसता हो तो प्रेमचंद की नजर में ऐसे साहित्यकारों के लिए दुनिया में कोई स्थान न मिले तो भी अनुचित नहीं है। वे स्पष्ट कहते हैं कि "जब साहित्यकार बनने के लिए अनुकूल रुचि के सिवा और कोई कैद नहीं रही, जैसे महात्मा बनने के लिए किसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं, आध्यात्मिक उच्चता ही काफी है, तो जैसे महात्मा लोग दर-दर फिरने लगे, उसी तरह साहित्यकार भी लाखों निकल आये।"

प्रेमचंद की मान्यता है कि साहित्यकार पैदा होता है, बनाया जाता है, पर यदि शिक्षा और जिज्ञासा से प्रकृति की इस देन को बढ़ाया जा सके, सँवारा जा सके तो निश्चय ही कोई साहित्यकार साहित्य की अधिक सेवा कर सकता है। वे बतलाते हैं कि जिस साहित्यकार में राजनीति, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की जानकारी हो, वह श्रेष्ठ साहित्य की रचना कर सकता है। साहित्यकार के लए इन विषयों की जानकारी होना उसके लिए आदर्श स्थिति है। यहाँ वे एक बात की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते हैं, वह यह कि जिस व्यक्ति को धन-वैभव प्यारा है, साहित्य-मंदिर में उनके लिए स्थान नहीं है। यहाँ तो उन उपासकों की आवश्यकता है, जिन्होंने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया है। सेवा में जो आध्यात्मिक आनंद है, वही साहित्यकार का पुरस्कार है। उसको अपने आप को समाज का झंडा लेकर चलनेवाला सिपाही मानना चाहिए। सादा जीवन उच्च विचार उसकी जीवन शैली होनी चाहिए। जो सच्चा साहित्यकार है, वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता।

प्रेमचंद इस बात को स्वीकार करते हैं कि साहित्यकारों में कर्मशक्ति का अभाव है। साहित्य का काम जबतक केवल मन-बहलाव का सामान जुटाना, केवल लोरियाँ गा-गाकर सुलाना, केवल आँसू बहाकर जी हल्का करना था, तब तक इसके लिए कर्म की आवश्यकता न थी, पर अब स्थिति बदल गयी है। संवेदना के वे पुराने दस्तावेज आज जाली हो गये हैं। इसलिए लेखक की स्पष्ट धारणा है कि आज के बदले परिवेश में वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का

भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो–जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।

1.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रेमचंद के अनुसार साहित्य क्या है? उसके उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. साहित्य जीवन की व्याख्या है, कैसे?
3. साहित्य मात्र सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं है, इस कथन की पुष्टि कीजिए।
4. साहित्यकार के आदर्श क्या हैं? प्रेमचंद की दृष्टि में श्रेष्ठ साहित्यकार किसे कहेंगे?
5. साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है। इस उक्ति से आप क्या समझते हैं?

जीवन में साहित्य का स्थान

पाठ-संरचना

2.0 जीवन का उद्देश्य
2.1 आनंद और मनोवेग
2.2 जीवन क्या है?
2.3 साहित्य भेद मिटाता है।
2.4 जीवन में साहित्य की उपयोगिता
2.5 साहित्य का आदर्श त्याग-उत्सर्ग
2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

'जीवन में साहित्य का स्थान' शीर्षक निबंध में प्रेमचंद ने जीवन और साहित्य के अंत: संबंधों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। उनकी मान्यता है कि साहित्य का आधार जीवन है' जो साहित्य जीवन से विमुख होगा, उसकी उम्र उँगलियों के पोरों पर गिनी जाएगी। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है। लेकिन, जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिए अनंत है, अगम्य है। जीवन परमात्मा के प्रति जवाबदेह है, लेकिन साहित्य मनुष्य के प्रति जवाबदेह है।

2.0 जीवन का उद्देश्य

जीवन का उद्देश्य आनंद की प्राप्ति है। व्यक्ति आजीवन इसी आनंद की प्राप्ति के लिए प्रयासशील रहता है। कोई सुखी परिवार में आनंद पाना चाहता है, तो कोई धन-दौलत में। परन्तु, साहित्य का आनंद इससे अलग होता है। साहित्य का आनंद सुंदर और सत्य से मिलता है। इसी आनंद को दर्शाना, वही आनंद उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य है। साहित्य का आनंद अखंड और अमर होता है।

साहित्य में आनंद रस की अवधारणा बहुत प्राचीन है। साहित्य आनंद से परे हो ही नहीं सकता। यहाँ तक कि नौ रसों में करुण, बीभत्स, भयानक जैसे रसों से भी आनंद की ही प्राप्ति होती है। सत्य हरिश्चंद्र नाटक के कारुणिक दृश्यों को देखते-देखते आँखों से आँसू बहने लगते हैं, फिर भी दर्शक उसे देखते हैं। इसी तरह भारतेन्दु ने हरिश्चंद्र के श्मशान घाट का जो भयावह और बीभत्स दृश्य चित्रित किया है, उसे देखकर आनंद की ही प्राप्ति होती है। तात्पर्य यह है कि साहित्य का उद्देश्य रस-निष्पत्ति ही है।

प्रेमचंद सभी रसों में आनंद की प्रतीति मानते हुए भीशृंगार रस को सर्वप्रमुख बताते हैं। उन्हीं के शब्दों में–"कोई रस साहित्यिक दृष्टि से रस नहीं रहता और न उस रचना की गणना साहित्य में की जा सकती है, जोशृंगार विहीन और असुंदर हो, जो रचना केवल वासना-प्रधान हो, जिसका उद्देश्य कुत्सित भावों को जगाना हो, जो केवल बाह्य जगत से संबंध रखे, वह साहित्य नहीं है।"

2.1 आनंद का संबंध मनोवविज्ञान से है

वस्तुत: सत्य से आत्मा तीन स्तरों पर संबंद्ध होती है–(1) जिज्ञासा (2) प्रयोजन (3) आनंद। जिज्ञासा का संबंध दर्शन का विषय है, प्रयोजन का संबंध विज्ञान का विषय है और साहित्य का विषय केवल आनंद का है। सत्य जहाँ आनंद का स्रोत बन जाता है, वहीं वह साहित्य हो जाता है। आनंद का संबंध व्यक्ति के मनोभावों से है और साहित्य का विकास मनोभावों द्वारा ही होता है।

2.2 जीवन क्या है?

जीवन केवल खाना-पीना-सोना-मर जाना भर नहीं है। यह काम तो पशु भी करते हैं। पर, मनुष्य पशु नहीं है। वह इन कामों से अलग भी कुछ करता है। मनुष्य में कुछ ऐसी मनोवृत्तियाँ होती हैं, जो प्रकृत्ति के साथ हमारे मेल में बाधक होती हैं, कुछ ऐसी होती हैं, जो इस मेल में सहायक बन जाती हैं। अहंकार, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष हमारे मन की बाधक प्रवृत्तियाँ हैं। यदि मनुष्य इनके अधीन हो जाय तो जीना दूभर हो जाय। उनपर नियंत्रण रखना और संयमित जीवन जीना यही तो मनुष्य को मनुष्य बनाता है। मनुष्य में जो सद्वृत्तियाँ हैं, उन्हें उत्तेजित कर दूषित वृत्तियों को स्वाभाविक रूप में शांत करना साहित्य का मुख्य कार्य है। वह मनोविकारों को दूर कर सद्वृत्तियों को जगाता है। साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश हार जाते हैं, वहाँ साहित्य अपना काम कर जाता है। यही कारण है कि हम उपनिषदों और अन्य धर्मग्रंथों को साहित्य की सहायता लेते देखते हैं। बौद्धों की जातक कथाएँ, कुरान, बाईबिल आदि सभी मानवी कथाओं के संग्रह-मात्र हैं। उन्हीं कथाओं पर हमारे बड़े-बड़े धर्म स्थिर हैं। वहीं कथाएँ धर्मों की आत्मा हैं।

2.3 साहित्य भेद मिटाता है

सृष्टि में भेद के अनेक स्तर हैं। यहाँ तक कि मनुष्य में भी कई स्तरों पर यह भेद पाया जाता है। भाषा-बोली, रहन-सहन, ग्रामीण-नगर आदि रूप इसके प्रमाण हैं। यहाँ तक कि विद्यार्थी कृषक जीवन से, कृषक-व्यापार जगत् से भिन्न होता है, पर साहित्य जगत् में प्रवेश करते ही यह भेद मिट जाता है। हमारी मानवता विशाल और विराट होकर समस्त मानव जाति पर अधिकार पा जाती है। मानव ही नहीं चर-अचर, जड़-चेतन सभी उसके अधिकार में आ जाते हैं। उदाहरण के लिए राजा रामचंद्र से प्रत्येक प्राणी उतना ही प्रभावित होता है, जितना और कोई व्यक्ति। प्रेमचंद लिखते हैं–"साहित्य वह जादू की

लकड़ी है, जो पशुओं में, ईंट-पत्थरों में, पेड़-पौधों में भी विश्व की आत्मा का दर्शन करा देती है। साहित्यकार अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। वह रो उठता है, उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता, वह सदा नया बना रहता है, उसकी प्रासंगिकता हमेशा बनी रहती है।

विज्ञान और दर्शन समय के अनुसार बदलते रहते हैं, पर साहित्य हृदय की वस्तु होने के कारण अपरिवर्तनीय बना रहता है। हर्ष-विषाद, सुख-दुख, क्रोध-घृणा आज भी हमारे मन पर उसी प्रकार काबिज हैं, जैसे आदिकवि वाल्मीकि के जमाने में थे। 'रामायण' और 'महाभारत' अतीत में रचे गये, पर ये ग्रंथ कालजयी हैं। इनपर समय की धुंध पड़ी ही नहीं। प्रेमचंद के शब्दों में–"साहित्य ही सच्चा इतिहास है, क्योंकि उसमें अपने देश और काल का जैसा चित्र होता है, वैसा कोरे इतिहास में नहीं हो सकता। घटनाओं की तालिका इतिहास नहीं है और न राजाओं की लड़ाइयाँ ही इतिहास हैं। इतिहास जीवन के विभिन्न अंगों की प्रगति का नाम है और जीवन पर साहित्य से अधिक प्रकाश और कौन वस्तु डाल सकती है, क्योंकि साहित्य अपने देश-काल का प्रतिबिम्ब होता है।

2.4 जीवन में साहित्य की उपयोगिता

प्रेमचंद के अनुसार साहित्य व्यक्ति के जीवन में क्रूरता की जगह कोमल भावनाओं का संचार करता है। बुराई को अच्छाई में बदलना, असुंदर को को सुंदर बनाना साहित्य का चरम लक्ष्य है। लेखक ने दो उदाहरण प्रस्तुत कर अपने कथन को प्रमाणित करना चाहा है। प्रथम, उदाहरण नादिरशाह जैसे क्रूर शासक का है। दिल्ली में कत्ले आम के लिए नादिरशाह कुख्यात रहा है। उसने निर्दोष लोगों के खून से दिल्ली की सड़कों को सराबोर कर डाला। जब उसका अत्याचार कम नहीं हुआ तो उसके एक वजीर ने अपने प्राण हथेली पर रखकर एक शेर पढ़ा, जिसका अर्थ था–"तेरे प्रेत की तलवार ने अब किसी को जिंदा न छोड़ा। अब तो तेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि तू मुर्दों को फिर जिला दे और फिर उन्हें मारना शुरू करे।" इस मार्मिक उक्ति को सुनकर नादिरशाह जैसे क्रूर के हृदय में मनुष्य जाग उठा और उसने कत्लेआम तुरंत बंद करा दिया। दूसरा उदाहरण नेपोलियन का है। उसने एक मल्लाह को झाँऊ की नाव पर समुद्र पार करते देखा। नेपालियन के पूछने पर उसने बताया कि मेरी वृद्धा माँ घर पर अकेली है, मैं उसे एक बार देखना चाहता था। यह सुनकर नेपोलियन की आँखों में आँसू छलछला आये। मनुष्य का कोमल भाग स्पंदित हो उठा। उसने उस सैनिक को फ्रांसीसी नौका पर इंग्लैंड भेज दिया। साहित्य मनुष्य के भीतर छिपी इसी कोमल भावना को जाग्रत करता है। प्रेमचंद ने ठीक ही लिखा है–"मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल-प्रपंच या परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है।" मानव सभ्यता निश्चय ही साहित्य पर आधारित है। हम जो कुछ हैं, साहित्य के ही बनाए हैं। साहित्य सामाजिक आदर्शों को जन्म देता है।

2.5 साहित्य का आदर्श त्याग और उत्सर्ग है

भारत और यूरोपीय देशों में एक मूलभूत अंतर यह है कि हमारे यहाँ त्याग और उत्सर्ग की संस्कृति है जबकि यूरोपीय देशों की संस्कृति भोगवादी है। हमारे भारतीय साहित्य का यही मूल मंत्र भी है। किसी भी राष्ट्र की सबसे मूल्यवान संपत्ति उसके साहित्यिक आदर्श होते हैं। व्यास और वाल्मीकि ने जिन आदर्शों की सृष्टि की वह आज भी भारत का सिर ऊँचा किये हुए है। निस्संदेह साहित्यकार पर बड़ा भारी दायित्व है। हाथ में कलम आते ही रचनाकार पर जवाबदेही आ जाती है। लेकिन,

कलम हाथ में आते ही नया खून विध्वंसात्मक रचनाएँ करने लगता है। यथार्थवाद के आग्रही युवा साहित्यकार बुराइयों के नग्न चित्र खींचने में अपनी कला की सार्थकता मान बैठते हैं। यह सत्य की रूढ़ियाँ तोड़नी चाहिए, किन्तु मर्यादा के भीतर यह कार्य करना चाहिए। प्रेमचंद लिखते हैं–''स्थायी साहित्य विध्वंस नहीं करता, निर्माण करता है। वह मानव-चरित्र की कालिमाएँ नहीं दिखाता, उसकी उज्ज्वलताएँ दिखाता है। मकान गिरानेवाला इंजीनियर नहीं कहलाता। इंजीनियर तो निर्माण ही करता है।'' इसलिए युवा साहित्यकारों को आत्मसंयम से काम लेना चाहिए। उसके लिए केवल विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ काफी नहीं हैं। चित्र की साधना, संयम, सौंदर्य तत्त्व का ज्ञान इसकी उन्हें ज्यादा जरूरत है।

प्रेमचंद की मान्यता है कि साहित्यकार को आदर्शवादी होना चाहिए। भावों का परिमार्जन उनका मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। जबतक इस कार्य में साहित्यकार दक्ष नहीं हो जाते, उनके रचे गये साहित्य से मंगलाशा नहीं की जा सकती। अंत में लेखक साहित्य का जीवन में स्थान निर्धारित करते हुए कहता है–''साहित्य का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है और ईश्वर से यही याचना है कि हममें सच्ची साहित्य-सेवक उत्पन्न हों, सच्चे तपस्वी, सच्चे आत्मज्ञानी।'' प्रेमचंद ने साहित्य के इसी आदर्श का अनुपालन करते हुए अपनी सभी रचनाएँ कीं। चाहे 'अलग्योझा' कहानी हो या 'पंच-परमेश्वर', चाहे 'सेवा सदन' हो या 'गोदान', हरेक रचना में खलपात्रों की सद्वृत्तियाँ उजागर हुई हैं। यही प्रेमचंद का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जीवन क्या है और उसका क्या उद्देश्य है?
2. जीवन के उद्देश्य की पूर्त्ति में साहित्य कहाँ तक सहायक है?
3. साहित्य का लक्ष्य क्या है? वह कैसे हमारे भेदों को मिटाता है?
4. साहित्य का आदर्श क्या है? नये साहित्यकार के लिए लेखक ने किन कर्त्तव्यों का निर्धारण किया है?
5. जीवन और साहित्य का अन्योन्याश्रय संबंध है, प्रमाणित कीजिए।

कहानी कला (भाग 1, 2, 3)

पाठ-संरचना

3.0 पाठ-परिचय

3.1 मध्यकाल में कहानी की स्थिति

3.2 आख्यायिका और उपन्यास में अंतर

3.3 विभिन्न शैलियाँ

3.4 इतिहास और कहानी का सत्य

3.5 कहानी जीवन को समझने की कला है

3.6 कहानी के प्रकार

3.7 कहानी जीवन का विशेष अंग है

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 पाठ परिचय

प्रेमचंद ने कहानीकला शीर्षक तीन निबंधों में कहानी कला के विविध पहलुओं पर विचार किया है। उन्होंने गल्प या आख्यायिका शब्द का प्रयोग कहानी के लिए किया है। उनकी मान्यता है कि कहानी लिखने की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है। हमारे ऋषि-महर्षियों ने ज्ञान और दर्शन की ऊँची बातें कहानियों के रूप में लिखी हैं। उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन न होकर नैतिक शिक्षा और उपदेश देना था। लेकिन आजकल इसका स्वरूप किंचित भिन्न हुआ करता है। अब आख्यायिका में प्रेम कहानियाँ, जासूसी किस्से, यात्रा-वृत्तांत, चोमत्कारिक घटना, वैज्ञानिक बातें, गप-शप सब कुछ आ गया है। इस प्रकार आख्यायिका की परिभाषा ही बदल गयी है। एक अंग्रेजी विचारक का कहना है कि वैसी रचना जो पंद्रह मिनटों में पढ़ी जा सके, गल्प है। इसमें उपदेश हो या न हो, कोई बात नहीं। यह कहानी की प्राचीन अवधारणा से बिलकुल भिन्न बात है। हमारे देश में 'कथा सारित्सागर', 'बैताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' आदि में नैतिक शिक्षा और उपदेश पर काफी बल दिया गया है।

3.1 मध्यकाल में कहानी की स्थिति

वास्तव में मध्यकाल में कहानी के लिए गुंजाइश कम थी। उस समय काव्य और नाटक लिखने का प्रचलन था। उस समय भक्तिपरक काव्य लिखे गये और फिर राजाओं की प्रशंसा में दरबारी कवियों ने रचनाएँ कीं। किंतु, स्थिति फिर बदली और आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दी में जब हिन्दी गद्य का नया उन्मेष हुआ तो आख्यायिकाओं की रचना भी शुरू हुई। भारत के अलावा पश्चिमी देशों में भी अच्छे कहानिकार हुए, जिनमें मोपासाँ, बालजक, चेखब, टालस्टाय, दास्तासेब्स्की आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अपने देश में भी बंकिमचंद्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि उच्चकोटि के कहानिकार हुए।

3.2 आख्यायिका और उपन्यास में अंतर

आख्यायिका और उपन्यास दोनों में एक प्रकार की कहानी ही होती है। फिर भी दोनों में काफी अंतर है। आकार में तो दोनों की कोई तुलना ही नहीं की जा सकती। उपन्यास में घटनाओं, पात्रों और चरित्रों का समूह होता है, पर आख्यायिका में केवल एक घटना होती है। अन्य बातें उसी घटना के अंतर्गत होती हैं।

उपन्यास में स्थान, दृश्य, चरित्र की बहुलता होती है, पर आख्यायिक में ऐसा नहीं होता। उसमें केवल एक ही घटना या चरित्र का उल्लेख होना चाहिए।

उपन्यास अपेक्षाकृत अमीर लोगों के लिए उपयोगी होता है। वे अधिक कीमत वाला उपन्यास खरीद सकते हैं, उनके पास समय भी अधिक होता है। पर कहानी या आख्यायिका जन-साधारण के लिए होती है, जिनके पास न रुपया है, न धन और न समय।

3.3 कहानी-लेखक की विभिन्न शैलियाँ

आजकल कहानियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में लिखी जाती हैं। कभी तो वह परिचयात्मक होती है, कहीं वर्णनात्मक। कभी-कभी तो किसी की बातचीत के बीच से ही कहानी शुरू हो जाती है, कभी-कभी किसी दृश्य से। कभी-कभी तो कथा के अंत से ही कहानी शुरू कर दी जाती है, परिचय बाद में आता है। यह सब प्रेमचंद पश्चिम की नकल मानते हैं और कहते हैं कि इससे कथा जटिल और दुर्बोध हो जाती है। प्रेमचंद हर स्थिति में कहानी को सोद्देश्य ओर आदर्शोन्मुख मानते हैं। वे साहित्य को समाज का दर्पण मात्र नहीं मानते, बल्कि दीपक मानते हैं, जिसका काम प्रकाश फैलाना है। हमें प्राचीन साहित्य के आदर्शवादी स्वरूप की अनदेखी नहीं करनी चाहिए।

3.4 इतिहास और कहानी का सत्य

कहा जाता है कि इतिहास यथार्थ घटनाओं का दस्तावेज होता है और कहानी कल्पना पर आश्रित होती है। बात बहुत हद तक ठीक भी है। इतिहास में सब कुछ यथार्थ होते हुए भी असत्य है; क्योंकि उसमें हत्या, संग्राम, मार-काट के अलावा और क्या है? निश्चय ही इतिहास का वह यथार्थ हमारे लिए असुंदर है, इसलिए वह सत्य नहीं कहा जाएगा। जिस चीज का हमारे जीवन में कोई बेहतर उपयोग न हो, वह यथार्थ होते हुए भी सत्य नहीं है। दूसरी ओर कहानी में कल्पना के पंख लगाकर रचनाकार उस सत्य का साक्षात्कार कराता है, जो हमारे जीवन के लिए उपयोगी होता है। यह कहानी का सत्य है, उसे पढ़कर हमें आनंद की प्राप्ति होती है। प्रेमचंद के शब्दों में–"साहित्य काल्पनिक वस्तु है, पर उसका प्रधान गुण है आनंद प्रदान करना और इसीलिए वह सत्य है।"

3.5 कहानी जीवन को समझने की कला है

हमारे दर्शन का मुख्य विषय है–मनुष्य की पहचान करना। संस्कृति और सभ्यता का इतिहास भी इसी पड़ताल को इंगित करता है। यही काम साहित्य भी करता है। अंतर केवल इतना है कि साहित्य इस खोज को रसमय बनाकर उपस्थापित करता है। आध्यात्मिक रहस्यों का उद्‌घाटन ही कहानी का लक्ष्य होता है।

वर्त्तमान कहानियों में यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण पर बल दिया जाता है। पर प्रेमचंद की दृष्टि में कहानी को जीवन का यथार्थ चित्र मान लेना भारी भूल है। कहानी के व्याज से एक मनुष्य दूसरे के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है और उसके सुख-दुख में सह-अनुभूत्ति को प्राप्त करता है। प्रेमचंद यह स्वीकार करते हैं कि आख्यायिका की कला पश्चिमी जगत की देन है। आज की आपाधापी की जिंदगी में कहानियों को विशेष आश्रय मिला और वह साहित्य की विधा के रूप में परवान चढ़ती गयी। प्रेमचंद के अनुसार अच्छी कहानी वही है, जिसे पंद्रह-बीस मिनट में पढ़ा जा सके। वह थोड़े शब्दों में कही जाय, उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक न आने पाये। उसका पहला वाक्य मन को आकर्षित कर ले और अंत तक उसे मुग्ध किये रहे और उनमें कुछ चटपटापन हो, कुछ ताजगी हो और उसके साथ ही कुछ तत्त्व भी हो। वही कहानी सफल होती है, जिसमें मनोरंजन और मानसिक तृप्ति में से एक अवश्य उपलब्ध हो।

प्रेमचंद की मान्यता है कि सर्वोत्तम कहानी किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित होती है। हर व्यक्ति के भीतर अच्छाई और बुराई छिपी होती है। लेखक को चाहिए कि वह व्यक्ति में छिपे देवत्व को उजागर कर दे। इसके अलावा किसी समस्या का समावेश भी कहानी को आकर्षक बनाने के लिए किया जा सकता है।

3.6 कहानी के प्रकार

जिस प्रकार उपन्यास घटना-प्रधान और चरित्र-प्रधान होते हैं, उसी प्रकार कहानियाँ भी। लेकिन अपने लघु कलेवर के कारण कहानी की अपनी सीमा होती है। कहानी में संपूर्ण चरित्र को दिखलाना संभव नहीं होता, बल्कि उसके चरित्र के एक अंग को दिखाना ही उद्देश्य होता है।

आज कहानी कला ने कम समय में ही प्रौढ़ता प्राप्त कर ली है। कहानी के कथ्य और शिल्प में भी नवीनता आयी है। उसकी शैली अब प्रवाहमयी हो गयी है, उसमें व्यख्या का अंश कम, संवेदना का अंश अधिक रहता है। अब घटनाओं का उतना महत्त्व नहीं रह गया है। घटनाएँ पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने का साधन भर रह गयी हैं। उसका उद्देश्य स्थूल सौंदर्य का वर्णन करना नहीं है बल्कि वह ऐसी प्रेरणा चाहता है, जिसमें सौंदर्य की झलक हो।

3.7 कहानी जीवन का विशेष अंग है

मानव का कहानियों के साथ एक विशेष लगाव रहा है। बचपन से लेकर युवावस्था और वृद्धावस्था तक कहानियाँ किसी-न-किसी रूप में मनुष्य को आकृष्ट करती रहती हैं। यही कारण है कि व्यक्ति बचपन के खिलौनों, मिठाईयों ओर तमाशों को तो भूल सकता है, पर बालजीवन की मधुर स्मृतियों में कहानी की सत्ता को नहीं भूल सकता। शायद इसी लगाव का नतीजा है कि हर मनुष्य की यह लालसा रहती है कि वह कहानी बन जाय और उसका यश हर एक जबान पर हो।

कहानी का जन्म तो मनुष्य के संग ही हुआ है, पर पुस्तक रूप में यह कहानी 'कथा सरित्सागर' 'ईसप की कहानियाँ' और 'अलिफलैला' आदि पुस्तकों से हुई है। ये अपने जमाने के उज्ज्वल रत्न हैं। उनका मुख्य लक्षण कथा में विचित्रता थी।

मानव हृदय विचित्रता से बहुत प्रभावित रहा है। जनप्रियता ही श्रेष्ठकला की कसौटी है। प्रेमचंद उदाहरण देते हैं कि टालस्टॉय के 'वार एंड पीस' के मुकाबले 'अलिफलैला' की लोकप्रियता अधिक है। उन्हीं के शब्दों में–''जनरुचि परज और विहाग की अपेक्षा बिरहे और दादरे को ज्यादा पसंद करती है। बिरहों और ग्रामगीतों में बहुधा बड़े ऊँचे दरजे की कविता होती है।''

प्रकृति में जो कला है, सौंदर्य है, वह प्रकृति का निजी गुण है। उसमें मनुष्य का कोई हाथ नहीं है। यही नैसर्गिक कला और सौंदर्य मानव के मन-प्राणों को अभिभूत कर डालता है। वही दृश्य जब कलाकार के हाथों बन-सँवर कर उपस्थापित होता है, तो मानव उससे अपनापन महसूस करने लगता है।

अलंकारों की अधिकता नहीं :

प्रेमचंद कहानी कला में अनावश्यक अलंकृति के विरुद्ध हैं। वे मानते हैं कि जिस तरह भोजन अधिक मसाले के प्रयोग से अस्वास्थ्यकर हो जाता है, वैसे ही अलंकारों के व्यर्थ मोह में कहानीकला अरुचिकर हो जाती है। जो कुछ स्वाभाविक है, वही सत्य है। स्वाभाविकता से दूर होकर कला अपना आनंद खो देती है। यही बात कल्पना तत्व के साथ भी है। कल्पना की ऊँची उड़ान कथा की रंजकता को बाधित करती है। अब वह समय नहीं रहा, जब राजा-रानी की अलौकिक कथाएं सुनाई जाती थीं। अब अस्वाभाविक और अतिरंजित बातों को सुनना पसंद नहीं किया जाता। आख्यायिकाओं में हम अपने जीवन का प्रतिबिंब देखना चाहते हैं। उसके एक-एक वाक्य को, एक-एक पात्र को यथार्थ के रूप में देखना चाहते हैं। उनमें जो कुछ भी हो, वह इस तरह लिखा जाय कि साधारण बुद्धि उसे यथार्थ समझे। अब केवल उतने से संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि अमुक व्यक्ति ने अमुक काम किया। हम देखना चाहते हैं कि किन मनोभावों से प्रेरित होकर उसने यह काम किया। इसलिए मानसिक द्वंद्व वर्तमान कहानी-कला का अभिन्न अंग बन गया है।

कहानी में लेखक की उपस्थिति :

पहले की कहानियों में लेखक बिलकुल तटस्थ होता था। शायद इसी तटस्थता के कारण इलियट ने निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। अब इस टेकनीक में परिवर्तन हुआ है। आजकल कहानियों में लेखक के मनोगत विचारों और भावों को स्पष्टता के साथ महसूस किया जा सकता है। कहानियों का आधार अब मनोविज्ञान हो गया है। प्रेमचंद की कई कहानियों में उनकी मनोवैज्ञानिक उपस्थिति दर्ज की जा सकती है। जैसे - सुजानभगत, मुक्तिमार्ग, 'पंच परमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि। प्रेमचंद कहानी का प्रधान धर्म मनोरंजन के साथ-साथ मानव के भीतर सद्वृत्तियों का जगाना मानते हैं। अभिव्यक्ति मानव हृदय का स्वाभाविक गुण है। इस अभिव्यक्ति में स्वार्थ, अहंकार और ईर्ष्या बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। इन्हीं से हमारी सद्वृत्तियाँ संघर्ष करती हैं। मानव मन इन बाधाओं को परास्त कर अपने स्वाभाविक कर्म को प्राप्त करने की सदैव चेष्टा करता रहता है। इसी संघर्ष से साहित्य की उत्पत्ति होती है और यही साहित्य की उपयोगिता भी है।

कहानी की लोकप्रियता :

कहानी आज गद्य की तमाम विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा बन गयी है। आज शायद ही कोई ऐसी पत्र-पत्रिका देखने का मिलेगी, जिसमें कहानी न छपी हो। कहानियों का सार्वभौम आकर्षण होता है। इसके द्वारा हम विश्व के सभी प्राणियों को एक-दूसरे के निकट पाते हैं। लेखक के शब्दों में–''हम आस्ट्रेलिया का गेहूँ खाकर, चीन की चाय पीकर, अमेरिका की मोटरों पर बैठकर भी उनको उत्पन्न करनेवाले प्राणियों से बिल्कुल अपरिचित रहते हैं, लेकिन मोपासाँ, चेखब ओर टॉलस्टाय

की कहानियाँ पढ़कर हमने फ्राँस और रूस से आत्मिक संबंध स्थापित कर लिया है। हम वहाँ भी अपनी आत्मा का प्रकाश देखने लगते हैं।''

आज स्थिति इस कदर बदली है कि प्रत्येक कक्षा में कहानियाँ पढ़ाई जाती हैं, जबकि आजादी के पूर्व कहानियाँ पढ़ना समय की बर्बादी समझा जाता था। कभी-कभी तो कहानियाँ पढ़ते देख अभिभावकों की डाँट भी सुननी पड़ती थी। लोगों की धारणा थी कि किस्सों से चरित्र भ्रष्ट हो जाता है। कहानियाँ आज भी उतनी ही सत्य हैं, जितनी पहले थीं। उनका संबंध मनोभावों से है और मनोभावों में कभी परिवर्तन नहीं होता। कहानी में नाम और सन् के सिवा और सब कुछ सत्य है और इतिहास में नाम और सन् के सिवा कुछ भी सत्य नहीं है। लेकिन कलाकार हर हालत में जीवन सत्य का ही उद्‌घाटन करता है।

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रेमचंद ने कहानी की परिभाषा देते हुए उसके लिए किन बातों को आवश्यक बताया है?
2. पहले की कहानियों और आधुनिक कहानियों में दृश्य और शिल्प के संबंध में क्या अंतर आया है?
3. आख्यायिका और उपन्यास में अंतर बताते हुए कहानी-लेखन की विभिन्न शैलियों का वर्णन कीजिए।
4. कहानी जीवन की अभिव्यक्ति का अंग है कैसे?
5. कहानी के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करते हुए बताइए कि आदर्शोन्मुख कहानी की क्या विशेषताएँ होती हैं?
6. कहानी में लेखक की उपस्थिति का क्या अभिप्राय है? कहानी की भाषा-शैली में अलंकारों के अधिक प्रयोग से कौन-सी बाधाएँ उत्पन्न होती हैं?

उपन्यास

पाठ-संरचना

4.0 उपन्यास क्या है?

4.1 उपन्यास के दो प्रकार

4.1.1 यथार्थवाद

4.1.2 आदर्शवाद

4.1.3 आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

4.2 उपन्यास का अर्थ प्रचार नहीं

4.3 उपन्यास के गुण

4.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उपन्यास क्या है?

किसी भी वस्तु या विषय को परिभाषित करना बड़ा मुश्किल कार्य है, जो वस्तु या विषय जितना ही सरल होता है उसकी परिभाषा देना और भी जटिल हो जाता है। जितने व्यक्ति उतनी ही परिभाषाएँ सामने आती हैं। उपन्यास के साथ भी यही बात लागू होती है। उसकी कोई ऐसी परिभाषा नहीं है, जो सर्वमान्य हो। फिर भी कथासम्राट प्रेमचंद यदि उपन्यास की परिभाषा दे रहे हों तो निश्चय ही वह परिभाषा सर्वमान्य होनी चाहिए। वे लिखते हैं–"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"

इस परिभाषा के अनुसार मानव-चरित्र का विश्लेषण ही उपन्यास का मूल लक्ष्य है। चूँकि मनुष्य एक समान होते हुए भी मानसिक स्तर पर भिन्न हुआ करते हैं, इसलिए उपन्यास की विषय वस्तु भी मानव-चरित्र के हिसाब से अलग-अलग होती है। इसी भिन्नता की पड़ताल उपन्यास करता है।

4.1 उपन्यास के दो प्रकार

यह बताया जा चुका है कि उपन्यास मानव-चरित्र का चित्रांकन करता है, फिर जिस लेखक का चरित्राध्ययन जितना ही सूक्ष्म, जितना ही विस्तृत होगा, उतनी ही सफलता से वह चरित्रों का विश्लेषण कर सकेगा। यहाँ एक प्रश्न विचारणीय है कि लेखक को इन चरित्रों का अध्ययन करके उनको पाठक के सामने ज्यों का त्यों रख देना चाहिए या किसी खास उद्देश्य के चलते उनके चरित्र में कुछ परिवर्त्तन कर देना चाहिए। इस मूल प्रश्न के उत्तर के लिए उपन्यासों को दो वर्गों में विभाजित करना पड़ेगा--यथार्थवादी और आदर्शवादी।

4.1.1 यथार्थवाद

उपन्यासकार जिन चरित्रों का पाठक के समक्ष उनके यथार्थ या नग्न रूप में रख देता है, उन्हें यथार्थवादी चरित्र कहना उचित है। यहाँ लेखक को इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि इसका परिणाम क्या होगा या फिर पाठकों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा। चरित्र में कमजोरियाँ हों या खूबियाँ हों, बस उनका चित्रण भर लेखक का उद्देश्य होता है। यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है। एक प्रकार से यथार्थवाद हमें निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है। अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आती है। तो फिर ऐसे यथार्थवाद की क्या उपयोगिता है हमारे जीवन में? इस बारे में प्रेमचंद की मान्यता है--"इसमें संदेह नहीं कि समाज की कुप्रथा की ओर उसका ध्यान दिलाने के लिए, यथार्थवाद अत्यंत उपयुक्त है, क्योंकि इसके बिना बहुत संभव है, हम उस बुराई को दिखाने में अत्युक्ति से काम लें और चित्र को उससे कहीं काला दिखाएँ, जितना वह वास्तव में है। लेकिन जब वह दुर्बलतओं का चित्रण करने में शिष्टता की सीमाओं को लाँघ जाता है तो आपत्तिजनक हो जाता है।" लेकिन इस यथार्थवादी चित्रण का एक नकारात्मक पहलू भी है। यदि मनुष्य को उपन्यासों में भी वही कुछ पढ़ने को मिले जिसे वह अपने रोजमर्रा की जिंदगी में देखता-सुनता है, तो उपन्यास पढ़ने का क्या फायदा होगा? इसलिए वह यथार्थ से हटकर एक नयी दुनिया में जीना चाहता है।

4.1.2 आदर्शवाद

मनुष्य के जीवन में आपाधापी है, उत्पीड़न है, संघर्ष है, कुंठा है, संत्रास है। यदि साहित्य में भी वही कुछ देखने को मिले तो साहित्य नहीं पढ़ना ही बेहतर होगा। प्रेमचंद के शब्दों में--"अँधेरी गर्म कोठरी में काम करते-करते जब हम थक जाते हैं तो इच्छा होती है, किसी बाग में निकलकर निर्मल स्वच्छ वायु का आनंद उठाएँ। इसी कमी को आदर्शवाद पूरा करता है। वह हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं।" इस कथन से साफ जाहिर है कि प्रेमचंद यथार्थ की अपेक्षा आदर्श को पसंद करते हैं।

4.1.3 आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

यह सत्य है कि यथार्थवाद में हम किसी चरित्र को ज्यों का त्यों देखते हैं। दूसरी ओर आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम लोक में पहुँचा देता है। दोनों के खतरे हैं। आदर्शवाद में इस बात का संदेह बना रहता है कि हम जिस चरित्र को गढ़ने जा रहे हैं, वह कहीं इस रूप में चित्रित न हो जाय, जिसे हम अपने बीच का आदमी न मानकर देवता समझ बैठें।" किसी देवता की कामना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण-प्रतिष्ठा करना मुश्किल है। यथार्थवाद और आदर्शवाद की इन सीमाओं के कारण ही प्रेमचंद उन उपन्यासों को श्रेष्ठ मानते हैं, जिनमें यथार्थ और आदर्श दोनों का पुट हो। इसे ही वे

आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की संज्ञा देते हैं। वे लिखते हैं–"आदर्श को सजीव बनाने ही के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है, जो अपने व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर ले। जिस उपन्यास के चरित्रों में यह गुण नहीं है, वह दो कौड़ी का है।" लेकिन लेखक यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि आदर्श का अर्थ यह कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि कोई भी चरित्र शत-प्रतिशत आदर्श हो। यदि वह मनुष्य है तो उसमें तो त्रुटियाँ होंगी ही। लेकिन आदर्शोन्मुख यथार्थवाद में उन त्रुटियों का वर्णन ऐसा होना चाहिए कि उसके चरित्र 'पाजिटिव' हों, जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकाएँ, बल्कि उसको परास्त करे, जो वासनाओं के पंजे में न फँसे, बल्कि उसको परास्त करें। ऐसे चरित्रों का पाठकों के ऊपर असर पड़ता है। प्रेमचंद की यही प्रवृत्ति उनके सभी उपन्यासों में पायी जाती है।

प्रेमचंद का दृष्टिकोण उपयोगी यथार्थसाद और आदर्शवाद के समन्वय का है। अस्वाभाविक आदर्शवाद, यथार्थवाद और अतियथार्थवाद का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया। उनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है–"कल्पना के गढ़े हुए आदमियों में हमारा विश्वास नहीं है, उनके कार्यों और विचारों से हम प्रभावित नहीं होते। हमें इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि लेखक ने जो सृष्टि की है, वह प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर की गयी है और अपने पात्रों की जबान से वह खुद बोल रहा है।"

4.2 उपन्यास का अर्थ प्रचार नहीं

प्रेमचंद की दृष्टि में वही साहित्य चिरायु हो सकता है, जो मनुष्य की मूल संवेदनाओं पर अवलंबित हो। लेकिन जब साहित्य की रचना किसी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मत के प्रचार के लिए की जाती है तो वह अपने ऊँचे पद से गिर जाता है। यह सत्य है कि इस मशीनी युग में परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही हैं और इस बदले हालात में लेखक पर उन परिस्थतियों का असर भी पड़ता है। बड़े-बड़े विद्वान् भी रचना द्वारा किसी विचार या 'वाद' का प्रचार करते नजर आते हैं। इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि उनका साहित्य क्षणिक महत्त्व का है। इसमें मुख्य बात मानवीय संवेदनाओं की होती है। यदि कोई साहित्यकार किसी विचार-प्रधान रचना में मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष चित्रित करता रहे तो वह श्रेष्ठ रचना कर सकता है। इसी अर्थ में उपन्यास को भी लेना चाहिए। विक्टर ह्यूगो, टालस्टॉय, डिकेन्स आदि की रचनाएँ इसी कारण अमर हैं। प्रेमचंद लिखते हैं–"कला के लिए कला का समय वह होता है, जब देश संपन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है, दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रंदन सुनाई देता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे? हाँ, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हों, उपन्यास की स्वभाविकता में विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाए, अन्यथा उपन्यास नीरस हो जाएगा।" इस प्रकार प्रेमचंद उपन्यास को कोरा प्रचार माध्यम नहीं मानते, उसमें जीवन के लिए संदेश आवश्यक है।

4.3 उपन्यासकार के गुण

उपन्यासकार के गुण के बारे में प्रेमचंद की स्पष्ट राय है कि उसे पुस्तकों से मसाला न लेकर जीवन से ही लेना चाहिए। उन्हीं के शब्दों में–"उपन्यासकार को अपनी सामग्री आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिए, जो उसे नित्य ही चारों तरफ मिलते रहते हैं। x x x पुस्तकों में नये चरित्र न मिलें, पर जीवन में नवीनता का अभाव कभी नहीं रहा।" प्रेमचंद उपन्यास में जीवन-चरित्र के साथ कल्पना के योग को भी आवश्यक मानते हैं, पर वह कल्पना दाल में

नमक की तरह होनी चाहिए। कोरी कल्पना किसी काम की नहीं होती। उसके लिए भी कुछ ठोस आधार चाहिए। यदि किसी भारतीय उपन्यासकार को इंग्लैंड के किसी देहात का वर्णन करना हो और वह वहाँ कभी गया ही न हो तो केवल कल्पना के सहारे उसका वर्णन करने से उसे बचना चाहिए। उसके पास आधार अवश्य होना चाहिए, तभी वह उस पर विशाल भवन निर्माण कर सकता है।

उपन्यासकारों के रचनात्मक उद्देश्यों के बारे में प्रेमचंद स्पष्ट करते हैं कि अपने उपन्यासों की कथा को कई भागों में बाँटना चाहिए। पहले छोटी बात खुले, फिर उससे कुछ बड़ी और अंत में रहस्य खुलना चाहिए। लेकिन प्रत्येक भाग में कुछ-न-कुछ रहस्योद्घाटन अवश्य होना चाहिए। इससे पाठक में उत्सुकता बनी रहेगी और यही उत्सुकता जगाना उपन्यासकार का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। इसके अलावा उसका उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि वह उपन्यास में सबकुछ न कह डाले, पाठक की कल्पना के लिए भी कुछ छोड़ देना चाहिए। पाठक तो कहानी का खाका मात्र चाहता है, रंग वह अपनी अभिरुचि के अनुसार भर लेता है। कुशल उपन्यासकार वही है, जो यह अनुमान कर ले कि कौन-सी बात पाठक स्वयं सोच लेगा।

उपन्यासकार को चाहिए कि वह किसी चरित्र की रूपरेखा या किसी दृश्य को चित्रित करते समय हुलिया-नवीसी न करे। दो-चार वाक्यों में मुख्य बात कहकर आगे बढ़ जाना चाहिए। अनावश्यक बातों से उसे परहेज करना चाहिए। जो दलित हैं, पीड़ित हैं, वंचित हैं, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत समाज है, इसी अदालत के सामने वह अपना इस्तगासा पेश करता है और उसकी न्यायवृत्ति तथा सौंदर्यवृत्ति को जाग्रत करके अपना यत्न सफल समझता है। लेकिन प्रेमचंद की दृष्टि में मात्र वकालत से काम नहीं चल सकता। साहित्यकार उपेक्षितों, तिरस्कृतों का पक्ष लेता अवश्य है लेकिन सत्य का आँचल नहीं छोड़ता है। वह एक सत्यवादी वकील है।"

उपन्यासकार को एक संवदेनशील मानव होना जरूरी है। यदि वह संवेदनशील नहीं है तो वह श्रेष्ठ उपन्यास की रचना नहीं कर सकता। इसीलिए प्रेमचंद पहले संवेदनशील मनुष्य बनने पर जोर देते हैं, बाद में उपन्यासकार बनने की। उनके मतानुसार उपन्यासकार को सत्यभाषी होना चाहिए। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, मनुष्यत्व को जगाता है, सद्भावों का संचार करता है तथा हमारी दृष्टि को व्यापक बनाता है।

4.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रेमचंद की दृष्टि में उपन्यास किसे कहते हैं? उपन्यासकार के गुणों का वर्णन कीजिए।
2. उपन्यास में यथार्थ और आदर्श के प्रयोग से आप क्या समझते हैं? अदर्शोन्मुख यथार्थवाद से लेखक का क्या अभिप्राय है?
3. जब कोई लेखक किसी 'वाद' का प्रचार करने लगता है तो उसका स्तर घट जाता है, इस उक्ति का क्या अभिप्राय है?
4. प्रेमचंद का दृष्टिकोण उपेयागी यथार्थवाद और व्यावहारिक आदर्शवाद के समन्वय पर आधारित है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।
5. उपन्यास में कोरी कल्पना के लिए जगह नहीं है, इस उक्ति का परीक्षण कीजिए।

उपन्यास का विषय

पाठ-संरचना

5.0 पाठ-परिचय
5.1 उपन्यासकार की सृजनात्मक शक्ति
5.2 घटना-वैचित्र्य
5.3 वर्ण्य विषय का चयन
5.4 चरित्रांकन में सावधानी
5.5 वार्त्तालाप की अधिकता
5.6 उपन्यास की सफलता की कसौटी
5.7 भावी उपन्यास का स्वरूप
5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 पाठ-परिचय

प्रेमचंद ने इस आलेख में उपन्यास के विषय, उसके क्षेत्र आदि पर विस्तार से विचार किया है। चूँकि उन्हें कथा सम्राट की उपाधि से विभूषित किया गया है, इसलिए इस संबंध में उनके विचारों की काफी अहमियत होगी। लेखक ने उपन्यास के विषय की चर्चा आरंभ करने के पहले 'वाल्टर वेसेंट' के विचारों को उद्धृत किया है। ''उपन्यास के विषय का विस्तार मानव-चरित्र से किसी कदर कम नहीं है। उसका सम्बन्ध अपने चरित्रों के कर्म और विचार, उनके देवत्व और पशुत्व, उनके उत्कर्ष और अपकर्ष से है। मनोभाव के विभिन्न रूप और भिन्न-भिन्न दशाओं में उनका विकास उपन्यास के मुख्य विषय हैं। इन पंक्तियों से जाहिर है कि उपन्यास संसार-साहित्य का प्रधान अंग है। इतिहास, दर्शन, समाज, नीति, विज्ञान, पुरातत्व आदि सभी विषयों का समावेश उपन्यास में संभव है। इस प्रकार निस्संदेह उपन्यास का विषय-विस्तार अधिक है, पर यही गुण उसे सीमा में बांधता भी है। विषय का क्षेत्र जितना ही विस्तृत होगा, उपन्यासकार के लिए वह एक चुनौती होगी।

5.1 उपन्यासकार की सृजनात्मक शक्ति

जिस उपन्यासकार में सृजनात्मक शक्ति जितनी अधिक होगी, वह उतनी ही प्रभावोत्पादक रचना कर सकेगा। वह जिन दृश्यों, दशाओं और मनोभावों का चित्रण करता है, उनमें यदि कल्पना-शक्ति का समावेश न हो तो रचना बेजान हो जाएगी। यदि उसमें कल्पना-शक्ति की कमी है तो चाहे उसने कितना ही देशाटन क्यों न किया हो, उसका अनुभव-क्षेत्र कितना भी विस्तृत क्यों न हो, उसकी रचना में सरलता नहीं आ सकती। उनकी रचनाओं को पढ़कर हमें यह ख्याल नहीं होता कि हम कोई सच्ची घटना देख रहे हैं। लेकिन, लेखक यहाँ सावधान करता है कि कल्पना-शक्ति के अतिरिक्त जोश में शब्दाडंबर का व्यूह रचना किसी भी रूप में श्रेयस्कर नहीं कहा जाएगा। हो सकता है कि ऐसे लेखक थोड़ी देर के लिए चर्चित हो जायं, पर जनता उन्हीं उपन्यासों का आदर करती है, जिनकी विशेषता उनकी गूढ़ता नहीं, उनकी सरलता होती है।

5.2 घटना-वैचित्र्य

प्रेमचंद मानते हैं कि उपन्यास को रोचक बनाने के लिए घटना-वैचित्र्य का सहारा लिया जा सकता है, पर यह घटना-वैचित्र्य उतना ही दिखाया जाय, जिससे प्रत्येक घटना असली साँचे के निकट प्रतीत होती हो। लेखक के शब्दों में–"उपन्यास में वही घटनाएँ, वही विचार लाना चाहिए, जिससे कथा का माधुर्य बढ़ जाय, जो प्लाट के विकास में सहायक हों अथवा चरित्रों के गुप्त मनोभावों का प्रदर्शन करते हों।" पहले के उपन्यासों में आधिकारिक और प्रासंगिक कथाएँ होती थीं। नाट्यभाषा में पताका और प्रकरी कथाएँ उपन्यास के कलेवर को बढ़ाती थीं। आज के उपन्यासों में लेखक का उद्देश्य मनोभावों और चरित्र के रहस्यों को खोलना होता है, अत: यह आवश्यक है कि वह अपने चरित्रों को सूक्ष्म दृष्टि से देखे, उसके चरित्रों का कोई भाग उसकी निगाह से न बचने पाये। ऐसे उपन्यासों में उपकथाओं के लिए कोई स्थान नहीं होता।

संसार की हर वस्तु उपन्यास का विषय बन सकती है, पर उस विषय का साहित्यिक मूल्य अवश्य होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि हमारे चरित्रनायक ऊँची श्रेणी के ही मनुष्य हों। हर्ष-विषाद, सुख-दुख जैसी मानवीय संवेदनाएँ सब में समान रूप से पायी जाती हैं। उपन्यासकार को बस चाहिए कि वह हृदय के उन तारों को झंकृत कर दे, ताकि पढ़नेवाले को यह पता न चले कि वह कोई उपन्यास पढ़ रहा है, बल्कि उसके पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित कर ले। यह सत्य है कि हमारे हृदय के अंतरतम भाव साधारण दशाओं में आंदोलित नहीं होते। इसके लिए उपन्यासकार को ऐसी घटनाओं की कल्पना करनी होती है, जो हमारा दिल हिला दे और हमारे भावों की गहराई तक पहुँच जाय। प्रेमचंद इस बात पर अफसोस जाहिर करते हैं कि आज के अधिकांश उपन्यास गहरे और प्रचंड भावों का प्रदर्शन नहीं करते। प्राय: वे साधारण बातों में ही उलझकर रह जाते हैं।

5.3 वर्ण्य विषय का चयन

आजकल एक प्रश्न चर्चा का विषय बना हुआ है कि उपन्यास में मानवीय दुर्बलताओं और कुवासनाओं का, कमजोरियों और अपकीर्त्तियों का वर्णन किया जाय अथवा नहीं। प्रेमचंद की मान्यता है कि जो लेखक अपने को इन विषयों में बाँध लेता है, वह कभी सच्चा कलाकार नहीं हो सकता। यह सही है कि आधुनिकता की माँग यथार्थवाद है, पर यथार्थवाद का यह आशय नहीं है कि वह जीवन-संग्राम में निरत एक मनुष्य की आंतरिक दशा की, सत् और असत् संघर्ष और अंत में सत्य की विजय की उपेक्षा कर डाले। यथार्थवादी चित्रण की हिमायत करने वालों पर लेखक चुटकी लेते हुए कहता है कि किसी कायर को यह कहने से वह बहादुर न हो जाएगा कि 'तुम कायर' हो। इसकी जगह उसे यह दिखाना होगा कि उसमें साहस, बल और धैर्य सब कुछ है, केवल उसे जगाने की जरूरत है। उपन्यासकार को बस यहीं सजग रहने की जरूरत होती है।

आज के उपन्यासों की यह सामान्य प्रवृत्ति हो गयी है कि उनमें कुकर्म, हत्या, चोरी, डाके आदि की घटनाएँ वर्णित की जायं। आज से पहले यह प्रवृत्ति नगण्य थी। कहने को लोग कहते हैं कि मानव समाज अब नैतिक और बौद्धिक दृष्टि

से उन्नत हो गया है, पर मनुष्य की धन-लिप्सा उपन्यास के चरित्रों को धन के लोभ से कुकर्म करते देखकर प्रसन्न होती है। आखिर ऐसी कथाएँ क्यों लिखी जा रही हैं? क्या प्रेम, अनुराग या उत्सर्ग की कथाओं में अब कोई आनंद नहीं आता? क्या मनुष्य में पशु-वृत्तियाँ इतनी प्रबल होती जा रही हैं कि अब उसके हृदय में कोमल भावों के लिए स्थान ही नहीं रहा?

5.4 चरित्रांकन में सावधानी

लेखक औपन्यासिक पात्रों के चरित्रांकन में बड़ी चौकसी बरतने की सलाह देता है। उसका मंतव्य है कि अगर पात्रों में किसी का चरित्र-विकास अवरुद्ध हो जाय तो उसे उपन्यास से निकाल देना चाहिए। ऐसा इसलिए कि उपन्यास चरित्रों के विकास का ही विषय है। अगर उसमें विकास दोष है तो वह उपन्यास कमजोर हो जायगा। कोई चरित्र अंत में भी वैसा ही बना रहे, जैसा वह पहले था—उसके बल, बुद्धि और भावों का विकास न हो, तो वह असफल चरित्र है। चरित्र-चित्रण पर इतना बल देने का मुख्य कारण यह है कि वह जितना स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा, उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर होगा। वह उपन्यासकार की रचना-शक्ति पर निर्भर करता है। लेकिन हिन्दी के वर्तमान उपन्यासों को देखने पर निराशा होती है। अधिकांश चरित्र उनमें ऐसे मिलेंगे, जो काम तो बहुत करते हैं, पर उनके चरित्र में आद्यंत एक-सी स्थिति बनी रहती है।

प्रेमचंद नये लेखकों को उस कमी से निबटने के लिए एक सलाह देते हैं। वे कहते हैं कि जब कोई नया उपन्यास शुरू किया जाय तो पहले उन चरित्रों का एक मानसिक चित्र बना लिया जाय, तो फिर उनका विकास दिखलाने में सरलता होगी। विकास परिस्थिति के अनुसार स्वाभाविक होना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि पाठक और लेखक दोनों को इस विषय में सहमत होना चाहिए। अगर पाठक यह महसूस करे कि इस दशा में ऐसा नहीं होना चाहिए था तो यह समझना चाहिए कि लेखक अपने चरित्र को अंकित करने में असफल रहा है। उपन्यास के प्रत्येक चरित्र में कोई-न-कोई विशेषता अवश्य रहनी चाहिए। ऐसा इसलिए कि संसार का कोई भी व्यक्ति एक समान नहीं होता, तो फिर स्वाभाविकता बनाये रखने के लिए उपन्यासों में भी यह वैविध्य रहना ही चाहिए।

5.5 वार्त्तालाप की अधिकता

प्रेमचंद की अवधारणा है कि उपन्यासों में पात्रों के बीच वार्त्तालाप या संवाद जितना ही अधिक होगा, वह उपन्यास उतना ही सफल माना जाएगा। वस्तुत: उपन्यास की कथा को संवाद ही बढ़ाते हैं। लेखक कम-से-कम बोले। यदि उसे बोलने की आवश्यकता महसूस हो तो पात्रों के मुख से ही बोले। लेखक इस बात की भी हिदायत देता है कि वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य सार्थक हो, जिससे पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता हो। वार्त्तालाप पूर्णत: स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल, सरल और सूक्ष्म होना जरूरी है। उपन्यास लेखक को इस बात का बराबर ध्यान रखना चाहिए कि कोई रचना रचयिता के मनोभावों का, उसके चरित्र का, उसके जीवनादर्श का, उसके दर्शन का आईना होती है। यहाँ मनोविज्ञान का वह सिद्धांत काम करता दिखाई देता है कि हम जैसे हैं, वैसे ही सारी चीजों को देखते हैं। उदाहरण के लिए किसी देशभक्त को उपन्यास के हर पात्र और उसकी परिस्थितियाँ उसके मनोनुकूल दिखनी चाहिए। जिनके विचार तिलिस्म और ऐय्यारी की दुनिया में आनंद लेते होंगे, उन्हें वैसे ही पात्र और परिस्थितियाँ चाहिए।" प्रेमचंद के शब्दों में—"अगर लेखक आशावादी है तो उसकी रचना में आशावादिता छलकती रहेगी। अगर वह शोकवादी है तो बहुत यत्न करने पर भी वह अपने चरित्रों को जिंदादिल न बना सकेगा।

5.6 उपन्यास की सफलता की कसौटी

प्रेमचंद की राय में वही उपन्यास सफल माना जाएगा, जिसे पढ़ लेने के बाद पाठक अपने अंदर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसकी सद्वृत्तियाँ जाग उठें। लेखक के शब्दों में–"जिसके भाव गहरे हैं, प्रखर है–जो जीवन में बद्दू बनकर नहीं, सवार बनकर चलता है, जो उद्योग करता है और विफल होता है, उठने की कोशिश करता है और गिरता है, जो वास्तविक जीवन की गहराइयों में डूबा है, जिसने जिंदगी के ऊँच-नीच देखे हैं, सम्पत्ति और विपत्ति का सामना किया है, जिसकी जिन्दगी मखमली गद्दों पर ही नहीं गुजरती, वही लेखक ऐसे उपन्यास रच सकता है, जिनमें प्रकाश, जीवन और आनंद प्रदान करने की सामर्थ्य होगी।"

5.7 भावी उपन्यासों का स्वरूप

प्रेमचंद उच्चकोटि के साहित्यकार थे। उन्होंने अपनी अनुभूतियों के बल पर आगे लिखे जाने वाले उपन्यासों की परिकल्पना भी की है। वे मानते हैं कि पाठकों का रुझान बदलता जा रहा है। अब वे मात्र कल्पना लोक की सैर करना पसंद नहीं करते। आगे वे ही उपन्यास समादृत होंगे, जो अनुभूति यानि यथार्थ की भूमि पर अवस्थित होंगे। उपन्यासों के पात्र कल्पित न होंगे, बल्कि जीवन पर आधारित होंगे। लेखक के शब्दों में–"भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई-बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जाएगा, जिनपर उसने विजय पायी है। हाँ, वह चरित्र इस ढंग से लिखा जाएगा कि उपन्यास मालूम हो। अभी हम झूठ को सच बनाकर दिखाना चाहते हैं, भविष्य में सच को झूठ बनाकर दिखाना होगा।" लेखक आधुनिक प्रवृत्तियों को देखते हुए यह दावा करता है कि अब आदर्शवादी रचनाएँ नहीं होंगी। यथार्थ की खुरदरी जमीन ही साहित्य-रसिकों को पसंद आएगी। चाहे किसी किसान का चरित्र हो या किसी देशभक्त का या किसी बड़े आदमी का, पर उसका आधार यथार्थ पर होगा। इस प्रकार अपने इस आलेख में लेखक ने अपने समकालीन उपन्यासों के विषय, क्षेत्र, पात्र और उनके चरित्र पर विचार करने के पश्चात् भावी उपन्यासों की प्रवृत्तियों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। आज की औपन्यासिक कृत्तियों को देखते हुए प्रेमचंद की वह भविष्यवाणी साकार हुई दिखती है।

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उपन्यासों की विषय-वस्तु के बारे में प्रेमचंद की क्या अवधारणा है? स्पष्ट कीजिए।
2. उपन्यासकार की सृजनात्मक शक्ति से क्या तात्पर्य है? किसी उपन्यास में घटना-वैचित्र्य के प्रयोग पर प्रकाश डालिए।
3. पात्रों के चरित्रांकन में उपन्यासकार को कौन-कौन सावधानियाँ बरतनी चाहिए?
4. उपन्यासों में लेखक की उपस्थिति किस हद तक उचित है? नये लेखकों के लिए प्रेमचंद ने कौन-सा संदेश दिया है?
5. भावी उपन्यास के बारे में लेखक की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी

पाठ-संरचना

6.0 पाठ-परिचय
6.1 राष्ट्रीयता की उद्‌भावना
6.2 प्रेमचंद का हिन्दुस्तानी विषयक दृष्टिकोण
6.3 भाषायी संकीर्णता
6.4 बोलचाल की भाषा उपयुक्त है
6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 पाठ-परिचय

प्रेमचंद ने अपने इस आलेख में देश की एक विषम और ज्वलंत समस्या पर विचार किया है। यह समस्या है—भाषा की। भाषा-भेद के आधार पर प्रांतों का निर्माण और फिर राजनीति खेमेबंदी हमारे देश के समक्ष एक विकट समस्या है। विश्व के प्रत्येक देश की अपनी राष्ट्रीय भाषा होती है। बिना उसके किसी राष्ट्र की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। भाषा ही किसी देशकी सांस्कृतिक एकता का निर्माण करती है। प्राचीनकाल में भारत एक शक्तिशाली और सार्वभौम राष्ट्र था। बौद्धों के पतन के बाद छोटे-छोटे चैत्यों और विहारों में उसकी राष्ट्रीयता सिमट गयी। हालाँकि उस समय भी देश में सांस्कृतिक एकता विद्यमान थी, तथापि भाषायी भेद ने देश को टुकड़ों में विभाजित कर रखा था। मुस्लिम शासनकाल में अवश्य ही भारत एक सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में जाना गया, पर उस समय भी पूरे देश में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव बना रहा।

6.1 राष्ट्रीयता की उद्‌भावना

जिस संदर्भ में आज राष्ट्रीयता की बात की जाती है, वह संदर्भ बहुत पुराना नहीं है। अंग्रेजों के आगमन, उनके शोषण और अत्याचार से उत्पीड़ित भारतीय जनमानस में इस भावना का उन्मेष उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। इस शताब्दी को हम राजनीतिक पुनर्जागरण का काल कह सकते हैं। हमारे देश के समाज सुधारकों और राजनेताओं ने विदेशी सत्ता से जूझने के

लिए राष्ट्रीय भाषा की जरूरत महसूस की। उन्होंने पाया कि देश के भीतर अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं, पर उनमें राष्ट्रीय भाषा बनने की योग्यता नहीं हैं। केवल एक भाषा ऐसी है, जिसे देश के अधिकांश लोग बोलते और समझते हैं। इसे ही राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिया जा सकता है, लेकिन इस भाषा के उन दिनों तीन स्वरूप मिलते थे–उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी। इन तीनों स्वरूपों के समर्थक और हिमायती देश में मोजूद हैं। इसे राजनीतिक रूप भी दिया जा रहा है। प्रेमचंद ने इस समस्या पर गंभीरता से विचार किया है। उनके अनुसार उर्दू और हिन्दी की प्रकृति अलग-अलग है। उर्दू का फारसी और अरबी के साथ स्वाभाविक संबंध है और हिन्दी का संस्कृत तथा प्राकृत के साथ। इसलिए इन दोनों भाषाओं को आपस में मिलाना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

6.2 प्रेमचंद का हिन्दुस्तानी विषयक दृष्टिकोण

प्रेमचंद मानते हैं कि उर्दू और हिन्दी दोनों अपने आपको अपने जन्म स्थानों और प्रचार क्षेत्रों तक सीमित रहें तो इनके विकास में कोई बाधा नहीं आएगी। वंगला, मराठी, तेलगु आदि प्रांतीय भाषाओं के लिए कहीं कोई बंधन नहीं है। वे संस्कृत, अरबी, लैटिन आदि भाषाओं से शब्द लेकर अपना भंडार भर सकती हैं, पर हिन्दी और उर्दू के साथ बात कुछ और है। वे अपनी प्रकृति के कारण बहुत स्वतंत्र नहीं हैं। ये भाषाएँ अलग-अलग रहकर राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्त्ति नहीं कर सकीं, इसलिए संयुक्त रूप से उनका संयोग और मेल आरंभ हो गया। इस मिले-जुले रूप को ही प्रेमचंद हिन्दुस्तानी नाम देते हैं। प्रेमचंद अरबी-फारसी से लदी उर्दू के पक्षपाती नहीं हैं। वे संस्कृतनिष्ठ हिन्दी की भी हिमायत नहीं करते। वे इन दोनों भाषाओं के मेल से बनी हिन्दुस्तानी के समर्थक हैं। निश्चय ही वे अपने पूर्ववर्त्ती साहित्यकार भारतेन्दु की 'आमफहम' भाषा के प्रशंसक हैं, जिसे सभी लोग आसानी से समझ सकें। जिस प्रकार अंग्रेजों की भाषा अंग्रेजी, चीन की भाषा चीनी, उसी तरह हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दुस्तानी होनी चाहिए। उनके विचार इन पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं–हमारी राष्ट्रीय भाषा तो वही हो सकती है, जिसका आधार सर्वसामान्य वोधगम्यता हो। जिसे सब लोग सहज में समझ सकें। वह इस बात की क्यों परवाह करने लगी कि अमुक शब्द इसलिए छोड़ देना चाहिए कि वह फारसी अरबी अथवा संस्कृत का है। वह तो केवल यह मानदंड अपने सामने रखती है कि जनसाधारण यह शब्द समझ सकते हैं या नहीं?'' लेखक अपने मत की पुष्टि के लिए अमीर खुसरों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिन्होंने अपनी मुकरियों में हिन्दुस्तानी की नींव रखी।

6.3 भाषायी संकीर्णता

देश जितनी प्रगति कर रहा है, उतनी ही भापिक संकीर्णता सिर उठाती जा रही है। इसमें हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं के प्रेमियों की संकीर्ण दृष्टि दिखाई देती है। प्रेमचंद ऐसे लोगों पर करारा व्यंगय करते हुए कबीर की भाँति फटकार लगाते हैं–''हिन्दी वाले इस बात पर तुले हुए हैं कि हम हिन्दी से भिन्न भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में किसी तरह घुसने ही न देंगे। उन्हें 'मनुष्य' से प्रेम है 'आदमी' से पूरी-पूरी घृणा है। 'इस्तीफा' को वे किसी तरह मंजूर नहीं कर सकते और इसके स्थान पर वे 'त्यागपत्र' रखना चाहते हैं। उर्दू वाले भी 'खुदा' को तो मानते हैं परंतु 'ईश्वर' को नहीं मानते। 'कुसूर' तो वे बहुत से कर सकते हैं, परन्तु 'अपराध' कभी नहीं कर सकते।'' निश्चय ही इस भाषाई विवाद में प्रेमचंद की 'हिन्दुस्तानी' की अवधारणा बिल्कुल उचित जान पड़ती है। वे हिन्द और उर्दू को मिलाकर एक नयी भाषा के हिमायती रहे हैं। इससे राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा। उर्दू और हिन्दी को अलग-अलग रखनेवालों के अपने-अपने तर्क हैं। विशुद्ध हिन्दी के पक्षपाती कहते हैं कि संस्कृत की ओर झुकने से हिन्दी भाषा हिन्दुस्तान की दूसरी भाषाओं के पास पहुँच जाती है। उर्दू वाले कहते हैं कि फारसी और अरबी उर्दू के पास आ जाती है। ये दोनों पक्षधर इन दोनों भाषाओं को अपने-अपने ढंग पर चलने देने का दावा पेश करते हैं। इन्हें आपस में मिलाने से दोनों के विकास का मार्ग अवरुद्ध बताते हैं। इस दृष्टिभेद का नतीजा यह होगा कि

राष्ट्रीय भाषा का विकास नहीं हो पाएगा। भाषा की यह दीवार शहरों में और खासकर पढ़े/लिखे तबके में अधिक ऊँची होती है। हर प्रांत के लोग चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, अपनी बोली का प्रयोग करते हैं। दैनिक कार्यों के निष्पादन के लिए उन्हें निखालिस उर्दू या विशुद्ध हिन्दी की जरूरत नहीं पड़ती।

6.4 बोलचाल की भाषा उपयुक्त है

प्रेमचंद बोलचाल की भाषा के प्रबल पक्षधर हैं। बोलचाल की हिन्दी समझने में न तो साधारण मुसलमानों को कोई परेशानी होती है और न बोलचाल की उर्दू समझने में साधारण हिन्दुओं को। बोलचाल की हिन्दी और उर्दू प्राय: एक जैसी है। जहाँ तक शब्दों की बात है तो दोनों संप्रदाय के लोगों को आपस में सहिष्णुता दिखानी होगी। हम अंग्रेजी के हजारों शब्दों को तो अपना सकते हैं, पर कुछेक संस्कृत या फारसी के शब्दों के प्रयोग में अपने को छोटा महसूस करने लगते हैं। यह भाषायी कट्टरता राष्ट्रहित में अनुचित है। हमारे देश की अधिकांश भाषाएँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संस्कृत से निकली हैं। यहाँ तक कि कुछ लिपियाँ, जैसे–गुजराती, मराठी और बँगला आदि देवनागरी से मिलती–जुलती हैं। आर्य भाषाओं के अलावा द्रविड़ कुल की भाषाएँ संस्कृत के बहुत निकट हैं, किंतु उनकी लिपियाँ भिन्न हैं। इसके विपरीत अरबी–फारसी के शब्दों में क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द भले ही मिल जांय, पर संस्कृत शब्दों की उतनी अधिकता नहीं मिलती, जितनी हिंदी में होती है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत में हिन्दी ही सर्व–स्वीकृत भाषा हो सकती है, जिसमें संस्कृत के शब्द अधिक हों। दूसरी ओर फारसी–अरबी से लदी उर्दू को बहुत कम मुसलमान समझ पाते हैं। इसलिए जनसंख्या और क्षेत्र के हिसाब से देशवासियों को उर्दू की हठधर्मिता का परित्याग कर देना चाहिए। दोनों भाषाओं के प्रचलित और सर्व सुबोध शब्दों का प्रयोग बोलचाल की भाषा के लिए उपयोगी होगा, ऐसा प्रेमचंद का विचार है।

कुछ लोग तर्क कर सकते हैं कि उर्दू–हिन्दी की मिली–जुली भाषा में किस्से–कहानियों की रचना तो की जा सकती है, परंतु विज्ञान और साहित्य के उच्च विषय उसमें नहीं लिखे जा सकते। सबसे अधिक कठिनाई तो पारिभाषिक शब्दों के निर्माण को लेकर होगी। प्रत्येक भाषा–भाषी अपनी–अपनी भाषाओं में पारिभाषिक शब्दावली तैयार कर रहे हैं। इससे समय का अपव्यय तो हो ही रहा है, देश के स्तर पर बहुत उपयोगी काम नहीं हो पा रहा है। लेखक का कहना है–"क्या यह बात कहीं अधिक उत्तम न होगी कि भिन्न–भिन्न प्रांतीय संस्थाएँ आपस में मिलकर परामर्श करें और एक दूसरे की सहायता से यह कठिन कार्य पूरा करें?"

लेखक का सुझाव है कि नये सिरे से पारिभाषिक शबद बनाने की अपेक्षा कहीं अच्छा यह होगा कि अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों में कुछ आवश्यक परिवर्तन करके उन्हीं को ग्रहण कर लिया जाय। यदि हमारी भाषा में बटन, लालटेन और बाइसिकल सरीखे सैकड़ों विदेशी शब्द रख सकते हैं तो फिर पारिभाषिक शब्दों को लेने में कौन–सी बात बाधक हो सकती है?

कुछ विचारक यह प्रश्न कर सकते हैं कि मिश्रित हिन्दुस्तानी की अवधारणा बहुत उचित नहीं है क्योंकि उसमें सरसता और कोमलता न होगी। प्रेमचंद का विचार है कि सरसता और कोमलता का मानदंड सदा बदलता रहता है। कई वर्ष पहले अचकन पर अंग्रेजी टोपी अच्छी नहीं लगती थी। पर अब यह चलने लगी है। प्रेमचंद एक अन्य उदहारण से अपनी बात की पुष्टि करते हैं। उनका तर्क है कि पहले स्त्रियों के लंबे बाल अच्छे माने जाते थे, पर अब तराशे हुए छोटे बालों का रिवाज चल पड़ा है। इसलिए लेखक की नजर में किसी भाषा का शाश्वत गुण, धर्म उसकी सरसता और सरलता नहीं है। फिर यदि इन गुणों को राष्ट्रीय भाषा बनाने के लिए त्याग भी देना पड़े तो कोई हानि नहीं होगी। उनकी दलील है कि यदि राजनीतिक संसार में एक फेडरेशन या संघ की नींव डाली जा सकती है तो साहित्य–संसार में भी एक फेडरेशन या संघ का निर्माण किया

जा सकता है। इस संघ में प्रत्येक प्रांतीय भाषा के प्रतिनिधि साल में एक बार, एक सप्ताह के लिए किसी केन्द्र में एकत्र होकर राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न पर विचार-विनिमय करें और बहस के दौरान उसके मार्ग में आने वाली बांधाओं का निराकरण करें। प्रेमचंद के शब्दों में–"अब वह अवसर आ गया है कि अखिल भारतीय हिन्दुस्तानी भाषा और साहित्य की एक सभा या संस्था स्थापित की जाय, जिसका काम ऐसी हिन्दुस्तानी भाषा की सृष्टि करना हो, ज़ो प्रत्येक प्रांत में प्रचलित हो।"

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद वैसी भाषा के समर्थक थे, जो बोलचाल के अधिक निकट हो, जिसमें संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू के अतिवादी दृष्टिकोण का परित्याग हो। वह शत-प्रतिशत अपने देश के लिए उपयुक्त हो, भले ही उसका नाम हिन्दुस्तानी ही क्यों न हो।

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रेमचंद की उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी के विषय में क्या अवधारणाएँ हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. क्या प्रेमचंद की हिन्दुस्तानी राष्ट्रीय एकता के लिए उपयोगी होगी? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।
3. भाषायी संकीर्णता राष्ट्रहित के विरुद्ध है, प्रमाणित कीजिए।
4. बोलचाल की भाषा क्या साहित्य और विज्ञान के लिए भी उपयुक्त होगी? स्पष्ट कीजिए।
5. पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में कौन-सी कठिनाइयाँ आ सकती हैं? निराकरण के लिए प्रेमचंद ने कौन-से उपाय सुझाए हैं?

गबन

'गबन' उपन्यास में वर्णित मध्यवर्गीय समस्याएँ

पाठ-संरचना

1.0 पाठ-परिचय
1.1 आभूषण प्रेम की समस्या
1.2 अर्थ की समस्या
1.3 समकालीन समस्या
1.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 पाठ-परिचय

'कायाकल्प' के बाद प्रकाशित प्रेमचंद का 'गबन' नामक उपन्यास उनके पहले लिखे गये उपन्यासों से बहुत कुछ भिन्न है। इसके अंदर लेखक की मनोवैज्ञानिक प्रतिभा का चमत्कार अत्यधिक दिखलाई पड़ता है। परिस्थितियों में पड़कर व्यक्ति का निर्माण अपने आप ही किस प्रकार हो जाता है, इसका सजीव चित्रण 'गबन' उपन्यास में देखा जा सकता है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास में कथानक ही ऐसे गढ़े हैं, जिससे उनके अंदर तत्कालीन सामाजिक प्रश्न तथा कुरीतियाँ पाठकों को बरबस सोचने के लिए विवश करती हैं। लेखक ने ये प्रश्न महज प्रश्न करने के लिए नहीं उठाये हैं, बल्कि उनका हल भी प्रस्तुत करना चाहा है। 'गबन' उपन्यास का प्रकाशन 1931 में हुआ था, इसलिए उस समय की सारी सामाजिक विडंबनाएँ इसमें मिश्रित हैं, फिर भी यहाँ इस उपन्यास की कतिपय प्रमुख समस्याओं पर विचार किया जाएगा।

1.1 आभूषण प्रेम की समस्या

गबन उपन्यास की मुख्य समस्या आभूषण-प्रेम की समस्या है जो भारतीय समाज के लिए अभिशाप बन गई है। मुख्यत: मध्य वर्ग जिसकी आर्थिक स्थिति अत्यंत खोरवली होती है, आभूषण-प्रेम के कुपरिणामों से इतना पीड़ित है कि इसका अस्तित्व ही कभी-कभी संदेहास्पद हो जाता है। समाज के लिए आभूषण प्रेम सचमुच बहुत बुरा गर्ज है, बहुत बुरा। वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए, बाल-बच्चों का पेट काटकर गहनों की भेंट कर दिया जाता है। बच्चों को दूध न मिले न सही, घी की गंध उनकी नाक तक न पहुँचे न सही, मेवों और फलों के दर्शन उन्हें न हों कोई परवाह नहीं, पर देवी जी गहनें

जरूर पहनेंगी और पतिदेव जी गहने जरूर बनवायेंगे। दस-दस, बीस-बीस रुपये पाने वाले क्लर्कों को देखता हूँ, जो सड़ी हुई कोठरियों में पशुओं की भाँति जीवन व्यतीत करते हैं, जिन्हें सबेरे का जलपान तक मयस्सर नहीं होता, उनपर भी गहनों की सनक सवार रहती है। इस आभूषण प्रेम की समस्या को लेकर प्रेमचंद जी ने समाज में पायी जाने वाली सभी प्रकार की स्त्रियों का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है और यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि किसी-न-किसी प्रकार का आभूषण प्रेम सभी वर्ग की स्त्रियों में होता है। चाहे वे बलिकाएँ हों, अथवा वृद्धाएँ, नवबधुएँ हों अथवा अधिकाधिक काल की परिणीता पत्नियाँ, अनुकूल पति की पत्नियाँ हों अथवा अनमेल विवाह के कुपरिणाम से त्रस्त वृद्ध पुरुष की युवती पत्नियाँ। इस आभूषण प्रेम के कारण वे स्वयं दु:खी रहती हैं और सारे परिवार को दु:ख में डाल देती हैं। जिस दिन उनका यह आभूषण-प्रेम समाप्त हो जाता है वे सचमुच देवियाँ बन जाती हैं और अपने मनोबल के प्रताप से गिरे हुए पुरुषों का भी उद्धार करने में समर्थ सिद्ध होती हैं। जालपा जिस समय बालिका थी, उसके मन में माता-पिता की असावधानी के कारण नकली हार के प्रति अनुराग जगा जो यौवन काल तक असली हार तक विकसित होता गया, जिससे वह यौवन-वसंत की रंगीनियों में भी मुरझाई रही। रमानाथ उम्र और रूप दोनों ही दृष्टियों से जालपा के योग्य पति था, पर जालपा के आभूषण प्रेम ने दोनों का जीवन दुखपूर्ण बना दिया। जालपा ने जिस दिन से आभूषण-प्रेम को त्याग दिया उसी दिन से वह एक साधारण युवती से ऊपर उठकर देवी बन गई और पैरों पर खड़ी होकर उसने भाग्य को अपने अनुकूल बना लिया तथा अपने भटके एक पथभ्रांत पति को भी उसने सुधार कर लिया। रामेश्वरी भी आभूषण से प्रेम रखती थी और उसने भी अपने यौवन काल में आभूषण बनवा रखे थे, पर बढ़ती हुई आर्थिक कठिनाइयों के कारण बाद को उन्हें बेचने पड़े। आभूषण के अभाव में रामेश्वरी अपने पति दयानाथ के साथ सुखी थी; क्योंकि पति-पत्नी के बीच आभूषण-प्रेम की कोई समस्या नहीं थी। रोगी एवं वृद्ध एडवोकेट इंदुभूषण की युवती पत्नी रतन भी आभूषण प्रेम की शिकार है, जिसके कारण वह रमानाथ के संपर्क में अत्यधिक आ गई थी। अर्थाभाव के न होने के कारण पारिवारिक कलह का प्रश्न तो रतन के आभूषण प्रेम के कारण नहीं उठा, पर रमानाथ के प्रति उसके मन में जो कटुता का संचार हो गया था, उसके मूल में उसका आभूषण प्रेम ही था। आभूषण प्रेम के समाप्त होते ही हम देखते हैं कि रतन का दृष्टिकोण इतना उदार हो गया कि वह जालपा को रुपये हठ करके दे जाती है और उसके दु:ख से स्वयं इतनी दु:खी हो जाती है कि जैसे जालपा उसकी सगी बहन हो। यहाँ तक कि देवीदीन की वृद्धा पत्नी जग्गो को भी गहने बनवाने का कुछ कम शौक नहीं है। वह चरस और गांजा पीने से विरत होने के लिए देवीदीन को इसलिए उपदेश देती है कि उसकी मेहनत की कमाई वह बैठे-बैठे फूंक दे रहा है। उसके लिए पैसे का सदुपयोग तो दो एक थान गहने बनवा लेना ही है। भारतीय समाज की इस कुप्रथा एवं उसकी मानसिक दुर्बलता का सजीव नग्न यथार्थवादी चित्र 'गबन' में प्रस्तुत किया गया है जो उपन्यासकार का उद्देश्य जान पड़ता है। परिवार-संबंधी अनेक समस्याएँ 'गबन' में आये पात्रों के माध्यम से उठाई जा सकती थीं, पर उपन्यासकार ने उधर से अपनी आँखें फेर ली हैं, केवल स्त्रियों को आभूषण-प्रेम को चित्रित किया है। जालपा की तरह रतन भी आभूषणों से प्रेम करती है, पर अर्थाभाव न होने कारण उसका आभूषण-प्रेम किसी भी प्रकार के सामाजिक अथवा आर्थिक कष्ट का सृजन नहीं करता। देवीदीन की वृद्धा पत्नी भी आभूषणों से अनुराग रखती है, पर उन्हें खरीदने के लिए उसके पास पैसे हैं, जिससे किसी भी प्रकार के पारिवारिक कलह की सृष्टि नहीं हो पाती। रमानाथ धनहीन है और जालपा पूर्णत: उसपर आश्रित है, जिससे वह रमानाथ की बातों पर ही विश्वास करने के कारण वास्तविक वस्तुस्थिति से अपरिचित ही रहती है। यदि वह 'जग्गो' की भाँति मालकिन होती तो कभी भी उसका यह आभूषण-प्रेम पारिवारिक संकट का कारण न बन पाता। क्योंकि हम देखते हैं कि जिस क्षण उसे वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जाता है, वह अपने इस आभूषण-प्रेम को सर्प के केंचुल की भाँति उतारकर निर्मल बन जाती है।

1.2 अर्थ की समस्या

इसकी दूसरी प्रमुख समस्या अर्थ की समस्या है, जिसके अभाव में बीसवीं शताब्दी का जीवन गतिशील ही नहीं हो सकता। सबको अर्थ की आवश्यकता है, जिनमें से कुछ के लिए तो वह उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और कुछ की संग्राहक बुद्धि को तुष्टि प्रदान करता है। पुरुष के पास शक्ति है, व्यवस्था है। वह पारिवारिक अर्थ व्यवस्था का सर्वेसर्वा है, जिससे उसमें आभूषण-प्रेम जैसी किसी कुवृत्ति के दर्शन नहीं होते, पर स्त्रियों की एकमात्र संपत्ति उनका आभूषण ही है; क्योंकि हिन्दू धर्मशास्त्र ने स्त्रियों को सभी संपत्तियों से वंचित रखा है और उसने यह स्पष्ट घोषित कर दिया है कि स्त्रियों का एक मात्र स्वामित्व उनके आभूषणों पर ही है। यही कारण है कि उनका सारा अर्थानुराग आभूषणों में केन्द्रीभूत हो गया है; क्योंकि गाढ़े दिनों में वही आभूषण उनकी सहायता करता है। क्या रामेश्वरी ने आवश्यकता पड़ने पर अपने गहने नहीं बेचे, क्या जालपा ने अपने गहनों को बेचकर गबन के रुपये नहीं चुकाये और यदि रतन ने वकील साहब के रुपयों को आभूषणों में परिवर्तित कर लिया होता तो क्या उसे अंत में दर-दर की खाक छाननी पड़ती? बैंक के बीस हजार रुपयों पर मणिभूषण का अधिकार हो सकता है, कार तथा बंगले को वह बेच सकता है, पर यदि स्त्रीधन के रूप में रतन के पास आभूषण होते तो उसे भी बेचकर क्या वह रतन को कंगाल बना सकता था? इस प्रकार आभूषण-प्रेम की समस्या वहीं विकट है जहाँ स्त्रियों को संपत्ति में अधिकार नहीं मिला है। संपूर्ण भारतीय जातियों में स्त्रियों की आर्थिक स्थिति समान नहीं। अत: आभूषण-प्रेम की समस्या को हम संपूर्ण भारतीय समाज के साथ भी नहीं जोड़ सकते, जिससे यह भारत के एक विशिष्ट खंड अथवा समाज की समस्या हो सकती है। विदेशों में इस प्रकार की समस्याओं के दर्शन हमें इसलिए नहीं मिलते कि वहाँ नारियों को आर्थिक अधिकार प्राप्त है। मध्यवर्ग की सबसे बड़ी समस्या है अर्थाभाव की समस्या, जिसके कारण वह न तो अपनी आवश्यकताओं को ही पूरी कर पाता है और न तो अपने सामाजिक स्तर की ही रक्षा करके थोथे स्वाभिमान एवं कौलिन्य की मर्यादा को ही अक्षुण्ण बना पाता है, जिससे स्वभावत: उनकी पूर्ति के लिए उसे झूठ बोलने पड़ते हैं, डींगे भरनी पड़ती हैं, और आवश्यकता पड़ने पर जेल के दरवाजे झाँकने पड़ते हैं, जिसका जीवंत उदाहरण 'गबन' का नायक रमानाथ है।

मानव के गतिशील जीवन में काम-भावना की प्रधानता देने वालों को प्रेमचंद ने 'गबन' के माध्यम से निर्मंत्रित किया है कि वे आकर रतन का दर्शन कर लें, जिसने काम-भावना को अर्थगंगा की लहरों में डुबो दिया है। वृद्ध पति की पत्नी होकर भी रतन का मन पर पुरुष के प्रति चंचल नहीं होता और न तो जालपा अपने युवक-पति को छोड़कर किसी धनिक व्यक्ति की ओर ही आकर्षित जान पड़ती है, क्योंक 'गबन' की सभी नारियाँ काम-भावना से प्रेरित न होकर अर्थ-भावना से प्रेरित होती हैं, चाहे वह रतन हो अथवा जालपा या रुपयों पर अस्मत बेचन वाली वेश्या जोहरा। इस उपन्यास के नारी पात्र सर्वप्रथम तो अपनी दुर्बलताओं के साथ हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं, पर अंत में चलकर प्रेमचंद उनके सबल पक्ष का ऐसा उद्‌घाटन करते हैं कि वह पूर्णत: बदल जाते हैं। रतन ने संपूर्ण धन-वैभव से मुँह मोड़ लिया और वह आकर प्रेमचंद की आदर्श नगरी में एक साधारण नारी की भाँति जोहरा की अमूल्य सेवाओं के साथ अपने जीवन का अंत कर देती है। घर की चहारदीवारी में बहू बनी आभूषण-प्रिया जालपा असाधारण नारी के रूप परिवर्तित हो जाती है। उसने अपने सारे सौकुमार्य का त्यागकर कठोर जीवन का व्रत लिया, जिससे अपने रीढ़हीन दुर्बल पति का उद्धार कर सकी। उसे जब हम दिनेश के परिवार वालों की सेवा करते तथा उनके लिए चंदे माँगते देखते हैं तो पहचान ही नहीं पाते। जोहरा वेश्या भी अपने सद्‌गुणों का उत्तमोत्तम परिचय देती है। वेश्या से वह समाज सेविका बन जाती है। इस प्रकार 'सेवासदन' की सुमन जो आदर्श उपस्थित नहीं कर सकी थी, उसे भी जोहरा ने उपस्थित कर दिया। सुमन की परिस्थितियों ने उसे वेश्या बनने के लिए विवश किया था। वह जन्मजात वेश्या

नहीं थी, जिससे उसमें परिवर्तन कर दिखला देना उतना कठिन नहीं था, जितना कि जोहरा में। जोहरा का परिष्कार तो प्रेमचंद ने कर लिया, पर उसके सामाजिक स्तर की व्यवस्था न कर सकने के कारण उसको उन्हें गंगा की लहरों को सौंपना ही पड़ा। इतना अवश्य है कि जालपा की स्वभावगत ईर्ष्याओं को बदलने की उन्होंने चेष्टा की है। वह रमानाथ और जोहरा के संबंधों से अपरिचित नहीं थी, फिर भी उसने उसे अपने पति के संपर्क में रहने की छूट दे रखी थी। निश्चत ही उसका यह आदर्श महान है। जोहरा के डूब जाने पर भी यद्यपि जालपा रमानाथ के साथ आकर उसी स्थान पर बैठती है जहाँ वह डूबी थी, पर क्या उसे उतना ही दु:ख हुआ जितना कि रमानाथ को? यहाँ पर वह प्रेमचंद के आदर्श के भार को उतार फेंकना चाहती थी कि वह स्वाभाविक स्त्री बन जाय, पर लेखक ने ऐसा नहीं होने दिया।

1.3 समकालीन समस्या

इन समस्याओं के अतिरिक्त 'गबन' में समकालीन समस्याओं की भी झलक आ गई है, जिससे हमें ऐसे भी देशभक्तों के दर्शन हो जाते हैं जो अपने जवान बेटों को खोकर भी यह कहने का कलेजा रखते हैं, ''उस वक्त ऐसा जान पड़ता था कि मेरी छाती गज भर की हो गई है, पाँव जमीन पर नहीं पड़ते थे, यही उमंग आती थी कि भगवान ने औरों को पहले न उठा लिया होता तो उन्हें भी भेज देता।'' एक ओर तो ऐसे देशभक्तों की कीर्ति-गाथा है और दूसरी ओर पुलिस के कर्मचारियों का समाज है, जिनमें अधिकांश भारतीय हैं, पर वे अपने को अंग्रेज ही समझते हैं। पुलिस के हथकंडों, उनके फरेब से भरे हुए मुकदमों, देशद्रोही प्रवृत्तियों, वेश्यागमन तथा शराब आदि संबंधी पापाचारों तथा वैयक्तिक स्वार्थों के लिए बेगुनाहों तक का गला काटने को प्रस्तुत रहने की इच्छाओं का सजीव वर्णन 'गबन' उपन्यास में मिलता है। एक बार पुलिस के चक्कर में आकर रमानाथ ऐसे दुर्बल व्यक्ति किस प्रकार उससे नहीं बच पाते तथा वे किस प्रकार के साधनों का उपयोग करके गलत को सही और सही को गलत सिद्ध कर देते हैं आदि प्रसंगों की सही रूपरेखा प्रेमचंद जी ने प्रस्तुत की है। इस प्रकार एक परिवार को चर्चा का विषय बनाकर प्रेमचंद ने 'गबन' की कथा को इतना खींचा है कि उसकी लपेट में समसामयिक परिस्थितियाँ तो समा ही गई हैं, साथ ही साथ उन्होंने अपनी कल्पना के सहारे समाधान भी प्रस्तुत कर दिया है। पुलिस कर्मचारियों से संबंधित सभी प्रसंग अत्यंत यथार्थवादी हैं, जबकि अन्य प्रसंगों में आदर्श का रंग अत्यधिक गाढ़ा हो गया है।

1.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'गबन' एक समस्या-प्रधान उपन्यास है, सिद्ध कीजिए।
2. 'गबन' उपन्यास की प्रमुख समस्या क्या है? उल्लेख कीजिए।
3. 'गबन' उपन्यास में प्रेमचंद ने मध्यवर्गीय परिवार की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया है, प्रमाणित कीजिए।
4. 'गबन' उपन्यास में आभूषण-प्रेम ही मुख्य समस्या है, कैसे?
5. 'गबन' उपन्यास में तत्कालीन भारत की अनेक समस्याएँ चित्रित हैं, प्रमाणित कीजिए।

जालपा का चरित्र-चित्रण

पाठ-संरचना

2.0 प्रेमचंद के नारी पात्रों की विशेषताएँ
2.1 जालपा का आभूषण-प्रेम
2.2 स्वाभिमानिनी जालपा
2.3 साहसी ओर दृढ़ निश्चयी जालपा
2.4 देशभक्त जालपा
2.5 भारत का उगता हुआ नारीत्व
2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 प्रेमचंद के नारी पात्रों की विशेषताएँ

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में नारी पात्रों को सिर्फ प्रेरक शक्ति के रूप में ही नहीं, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम करने वाले साथी के रूप में देखा है। उन्होंने नारी हृदय की उन शाश्वत भावनाओं के आधार पर अपनी रचनाएँ कीं, जिनकी युगों से उपेक्षा होती आयी थी। इसीलिए प्रेमचंद की नारी पारिवारिक तथा सामाजिक संघर्षों के बीच और भी निखरी है। प्रेमचंद नारी की स्वतंत्रता के समर्थक होने के साथ ही संयम और मर्यादा के भी समर्थक थे। इसीलिए 'गबन' में जालपा के चरित्र का विकास उस समय होता है जब वह रमानाथ को मुक्त कराने के लिए घर से बाहर आकर संघर्ष करती है।

प्रेमचंद के नारी पात्रों में जालपा एक नये ढंग की स्त्री है। वह परिस्थितियों से टक्कर लेती है, लेकिन कभी धैर्य नहीं खोती। भारी से भारी मुसीबत पड़ने पर वह विवेक से काम लेती है और कठिनाइयों का सामना करने के लिए नये-नये दावपेंच निकाल लेती है। वह निर्मला की तरह धुल-धुलकर प्राण देने वाली नहीं है और न 'सेवा सदन' की सुमन की तरह तैश में आकर जल्दी ही किसी अनजानी राह पर कदम उठाने वाली। उसका चरित्र कठिनाइयों का सामना करते हुए बराबर निखरता रहता है; क्योंकि वह अपनी खामियों को पहचान सकती है। वह एक ईमानदार और साहसी स्त्री है।

जालपा गाँव की लड़की है। सावन की घटाओं के नीचे बाग में वह झूला झूल चुकी है। कजली और बारहमासा के गीतों ने उसके मनोभावों को सरस और सदय बनाया है। लेकिन, वह किसी खेत मजदूर की लड़की न थी। उसके पिता उसके भविष्य के लिए यह न सोचते थे कि वह मर्द के साथ खेत में काम करेगी। उसके भविष्य के नक्शे में पति और गहने ही बनाये गये थे।

2.1 जालपा का आभूषण-प्रेम

स्त्रियों को अक्सर गहनों से प्रेम होता है। इसके लिए उन्हें कभी-कभी कोसा भी जाता है। अनेक पुरुष अपने ऊपर गर्व भी करते हैं कि वह गहनों जैसी तुच्छ चीजों से प्रेम करने वाली स्त्रियों से ऊँची हैं, लेकिन गहनों से स्त्रियों के इस प्रेम का कारण क्या है? प्रेमचंद इस बारे में लिखते हैं–"जालपा को गहनों से जितना अधिक प्रेम था, उतना कदाचित संसार की और किसी वस्तु से न था और उसमें आश्चर्य की कौन बात है? जब वह तीन वर्ष की थी, अबोध बालिका थी, उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती तो गहनों ही की चर्चा करती। तेरा दुल्हा तेरे लिए बड़े सुन्दर गहने लायेंगे। ठुमुक-ठुमुक कर चलेगी।" जब वह कुछ और बड़ी हुई तब उसने गुड़ियों को गहने पहनाये थे और बढ़ने पर अपने गाँव-घर की स्त्रियों से वह गहनों की चर्चा सुना करती थी। इस तरह उसका जीवन एक ऐसी दुनिया में बीता था जिसे प्रेमचंद ने आभूषण मंडित संसार कहा। निश्चय ही जालपा को गहनों का शौक था। बचपन से ही उसने चन्द्रहार का सपना देखा था। प्रेमचंद इसके पीछे स्त्री का कामकाजी न होना मानते हैं। वे कहते हैं कि स्त्री के लिए काम-काज के दरवाजे बंद होंगे तो वह जरूर गहनों के लोक में घूमती रहेगी।

जालपा और रमानाथ एक-दूसरे को प्यार करते थे, लेकिन वह प्यार का भ्रम ही था। जालपा गहनों को प्यार करती थी और रमा उसके रूप और जवानी को। एक दिन रमानाथ ने उसका मन रखने के लिए गहने चुरा लिये। तबसे जालपा के व्यवहार में अंतर आ जाता है। वह रमा से खिंची-खिंची रहने लगती है। रमा जालपा से अपने मन की बात नहीं कह पाता। कई बार संकल्प करता है कि कहे। लेकिन, हरबार संकल्प टूट जाता है। ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि परस्पर विश्वास का आधार अभी बन नहीं पाया। रमा जालपा का रूप-यौवन चाहता है, लेकिन बदले में क्या दे? वह गहने ही दे सकता है और गहनों से ही वह प्रसन्न हो सकती है। लेन-देन का आधार यहाँ भी छिपा हुआ है। रिश्वत, झूठ, मर्यादा बनाये रखने के लिए दाव-घात ये सब रमा के चरित्र की विशेषताएँ हैं जो संपत्ति की पूजा करनेवाले समाज में पैदा हुई हैं।

2.2 स्वाभिमानिनी जालपा

प्रेमचंद ने आभूषण से बेहद प्रेम करने वाली जालपा को एक स्वाभिमानि नारी के रूप में चित्रित किया है। उसे सच कहने और सोचने की शिक्षा मिली है। वह पीड़ितों की व्यथा को रमानाथ से ज्यादा अच्छी तरह समझती है। जब रमा नौकरी के अलावा ऊपरी आमदनी की बात करता है तो जालपा टोकती है–"तो तुम घूस लोगे। गरीबों का गला काटोगे?" रमा की तरह वह आत्मसम्मान के भाव से रीती नहीं है। जब उसकी माँ उसे अपना चंद्रहार भेजती है तो यह सोचकर कि उन्होंने उसे बड़े संकट में भेजा होगा, वह उसे वापस कर देती है। वह कहती है–"मैं किसी का दान न लूँगी। चाहे वह माता का ही क्यों न हो?" जालपा यहाँ पर बता देती है कि उसके गहनों के प्रेम की सीमा है। और, वह किसी भी कीमत पर गहने लेने को तैयार न हो जायेगी। उसका यही आत्मसम्मान उसका सबसे बड़ा रक्षक साबित होता है।

गहने न पाकर जालपा ने क्षोभ में अपनी सहेलियों वगैरह को पत्र लिखे और रमानाथ को पत्र छोड़ने को दिये। फिर उसे पश्चाताप हुआ। रमा ने उन्हें पढ़ लिया था और बिना पोस्ट किये उसे वापस ले आया था। जालपा यह न जानते हुए पहले ही अपने मन की कहानी कह देती है और रमा की निन्दा करने के लिए क्षमा माँग लेती है। फिर, जब जालपा को गहने मिल जाते हैं तो वह पति की सेवा करने लगती है। पहले की भाँति उसके नहाने का सामान रख देती है। दफ्तर जाने के वक्त कपड़े ला देती है। अब वह प्रसन्न रहने लगी ओर अपनी सहेलियों में गाने-बजाने से लेकर सिनेमा तक का आनंद लेने लगी। लेकिन, रमा के साथ अपने संबंध की असलियत को भी वह ज्यादा अच्छी तरह समझने लगी। उससे यह छिपा नहीं रहा कि रमा उससे मन की बात नहीं कहता है। क्यों नहीं करता, इस पर विचार करते हुए वह सत्य का पता लगा लेती है। रमानाथ से वह कहती है–''मुझसे प्रेम होता तो मुझपर विश्वास भी होता। बिना विश्वास के प्रेम हो भी कैसे सकता है, जिससे तुम अपनी बुरी से बुरी बात न कह सको उससे तुम प्रेम नहीं कर सकते। बोलो, है या नहीं। आँखें क्यों छिपाते हो?''

2.3 साहसी और दृढ़ निश्चयी जालपा

गबन के बाद जब रमा भागता है तो जालपा का साहस और धीरज देखते ही बनता है। वह अपना प्रिय हार बेच डालने का निश्चय कर लेती है। उसे अपनी सहेलियों से रुपये मिल सकते थे, पर वह ऐसा नहीं करती। वह खुद अपने अंत:स्थल को टटोलती है और इस सत्य को स्वीकार करती है कि अपने पति को खोने के लिए वह भी जिम्मेवार है, फिर भी धीरज से काम लेती है। अपनी सास पर यह जाहिर न होना देना चाहती कि कोई गंभीर घटना हो गई है। वह सारी रात अकेले जागते बिता देती है। सर्राफों के तकाजे आने पर वह अपने गहने बेच डालती है और उनके रुपये चुका देती है। उसे अपने बनाव-शृंगार की पिछली चीजों से घृणा हो जाती है। अपने मखमली स्लीपर, रेशमी मोजे, फीते वगैरह सब एक झोले में भरकर गंगा में प्रवाहित कर आती है। अपनी सखी रतन से वह अपने मन का भेद कहती है कि अगर वह रमा की जगह होती तो इस तरह नहीं भागती। कठिनाइयों से भाग खड़े होना जालपा के स्वभाव में नहीं है। अपने साहस और धीरज के बल पर ही भागे हुए पति का पता लगा लेती है।

2.4 देशभक्त जालपा

'गबन' में जालपा का चरित्र एक देशभक्त नारी के रूप में भी चित्रित हुआ है। देश-सेवा करने वालों के लिए उसके दिल में बड़ा सम्मान है। देश के साथ विश्वासघात करनेवालों के लिए केवल रोष और घृणा है। रमा ने मुखबिरी करके जब क्रांतिकारियों को सजा करा दी तो जालपा के लिए वह उसका सबसे बड़ा शत्रु हो गया। वह उससे कहना चाहती थी कि तुम्हारा धन और वैभव तुम्हें मुबारक हो। तुम्हारे खून से रंगे हाथों के स्पर्श से मेरी देह में छाले पड़ जायेंगे। जिसने धन और पद के लिए अपनी आत्मा बेच दी उसे मैं मनुष्य नहीं समझती। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम पशु भी नहीं हो, कायर हो, कायर। नि:संदेह जालपा स्नेह में जितनी कोमल है, घृणा में उतनी ही कठोर। पति का ध्यान छोड़कर वह उस क्रांतिकारी की बात सोचने लगती है, जिसे फाँसी की सजा दी गयी। उनकी बुढ़ी माँ और स्त्री के दु:ख का विचार करके रमा के लिए उसका मन और भी घृणा से भर जाता है। वह सरकारी गवाह बनकर रमानाथ रेशमी साफा बाँधे, सुनहरी ऐनक लगाये, देवीदीन के घर आकर अपनी सफाई पेश करने लगता है कि उसे पुलिस के दबाव के कारण ऐसा करना पड़ा, तब जालपा बाज की तरह कूदकर धम् धम् करती हुई नीचे आई और जहर में बुझे हुए नेत्र बाणों से उस पर प्रहार करती हुई बोली–''अगर तुम सख्ती और धमकियों से इतना दब सकते हो तो तुम कायर हो। तुम्हें अपने को मनुष्य कहने का कोई अधिकार नहीं। क्या सख्तियाँ की थीं, जरा

सुनूँ? लोगों ने हँसते-हँसते सिर कटा लिये हैं, अपने बेटों को मरते देखा है, कोल्हू में पेरे जाना मंजूर किया है, पर सच्चाई से जौ भर भी नहीं हटे। तुम भी तो आदमी हो, तो तुम क्यों धमकी में आ गये? क्यों नहीं छाती खोलकर खड़े हो गये कि इसे गोली का निशाना बना लो, पर मैं झूठ न बोलूँगा। क्यों नहीं सिर झुका दिये। देह के भीतर इसीलिए आत्मा रखी गयी है कि देह उसकी रक्षा करे, इसलिए नहीं कि उसका सर्वनाश कर दे।"

2.5 भारत का उगता हुआ नारीत्व

जालपा भारत के भविष्य के उत्कर्ष की अग्रसूचना है। उसने वर्त्तमान की राह पर मजबूती से पाँव रखा है। वह एक नई आग है जो झूठी संस्कृति के कागजी फूलों को भस्म कर देती है। वह सदियों की लांछना और अपमान को पहचानने वाली नयी शूरता है जिसके आगे कोई बाधा ठहर नहीं सकती। वह हिन्दुस्तान के नये आने वाले इतिहास की भूमिका है। वह इतिहास, जिसमें लाखों जालपा एक साथ आगे बढ़ेंगी और ऐसे नारीत्व का चित्र आँकेगी जिसके सामने सभी चित्र फीके लगेंगे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद के 'गबन' की नायिका जालपा के चरित्र में बहुरंगी छटा देखने को मिलती है। गाँव की अबोध बालिका जो गहनों के संसार से आई है, समय पड़ने पर उनका मोह त्याग देती है। उसके चरित्र का निखार एक देशभक्त और स्वाभिमानिनी नारी के रूप में हुआ है।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'गबन' की नायिका कौन है? उसका चरित्रांकन कीजिए।
2. जालपा में स्त्रियोचित दुर्बलता है तो महान नारी के गुण भी विद्यमान हैं। सिद्ध कीजिए।
3. जालपा के चरित्र में विभिन्न प्रकार के रंग उभरे हैं, प्रमाणित कीजिए।
4. गाँव की भोली-भाली जालपा के चरित्र का विकास एक देशभक्त नारी के रूप में 'गबन' में चित्रित है, प्रमाणित कीजिए।

रमानाथ का चरित्र-चित्रण

पाठ-संरचना

3.0 पूर्व परिवेश
3.1 रूपासक्त रमानाथ
3.2 विपत्तियों का शिकार
3.3 केन्द्रीय पात्र
3.4 यथार्थवादी रमा
3.5 मध्यवर्गीय मनोवृत्तियों का प्रतिनिधि
3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 पूर्व परिवेश

प्रेमचंद का 'गबन' नामक उपन्यास उनके अन्य पूर्व के उपन्यासों से बहुत कुछ भिन्न है। इसके अन्दर लेखक की मनोवैज्ञानिक प्रतिभा का चमत्कार अत्यधिक दिखलायी पड़ता है। परिस्थितियों में पड़कर किस प्रकार व्यक्ति का निर्माण अपने आप ही परिस्थितियों के अनुसार हो जाता है, 'रमानाथ' के जीवन में आये अनेक परिवर्त्तन इसके उदाहरण हैं।

प्रेमचंद के जीवनकाल और अंग्रेजी शासन में मध्यवर्गीय भारतीय समाज की जो अवस्था रही, उसमें आज भी बहुत परिवर्त्तन नहीं हो पाया है। बल्कि उसकी वे समस्यायें आज भी वर्त्तमान हैं जिन्हें आधुनिक प्रजातंत्रीय सरकार भी निर्मूल नहीं कर सकी है। कुल मर्यादा के अहम् से पीड़ित तथा आत्मप्रवंचना के रोग से ग्रस्त 'गबन' उपन्यास का केन्द्र चरित्र 'रमानाथ' अपनी एक साधारण सी मूल को आरंभ में न संभाल पाने के कारण किस प्रकार समस्याओं के ताने-बाने में मकड़ी की तरह उलझ जाता है, जिसे उसने अपनी मानसिक दुर्बलताओं के कारण स्वयं बुना है। पिता दयानाथ, माता रामेश्वरी तथा अन्य दो छोटे भाइयों से युक्त रमानाथ का एक छोटा-सा परिवार था जो दयानाथ की ईमानदारीपूर्ण नौकरी के बल पर आसानी से किसी प्रकार खा-पी लेता था। रमानाथ का विवाह प्रयाग के एक छोटे से ग्राम के निवासी दीनदयाल की कन्या जालपा से करके रमानाथ के पिता दयानाथ ने घर बैठे फजीहत मोल ले ली। दयानाथ की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि वे बेटे

का ब्याह बड़ी धूम-धाम से कर सकें, पर जब विवाह ठन गया तो उन्होंने गहनों से लेकर नाच-तमाशों तथा आतिशबाजियों तक पर कोई कोर-कसर नहीं रखी, भले ही उनपर इतना ऋण चढ़ गया जिसे भुगतान करने में वे असमर्थ थे। इस उत्साह में रामेश्वरी तथा अपने मन चले मित्रों से प्रेरित रमानाथ ने भी समान रूप से दयानाथ का उत्साहवर्द्धन किया।

3.1 रूपासक्त रमानाथ

जालपा के रूप पर रमानाथ और रमानाथ के रूप पर जालपा लट्टू थी, पर दो हृदयों को हार के अभाव का कांटा बराबर खटकने लगा। रमानाथ ने जालपा पर अपने अमीर होने का रंग चढ़ा रखा था जो स्त्री के सम्मुख एक दुर्बल व्यक्ति की विशेषता है, जिसकी रक्षा करने के लिए उसे उधार लिये हुए गहनों को लौटाने के लिए जालपा के गहनों की चोरी करनी पड़ी, मामूली नौकरी करने पर भी बाहरी आमदनी का ढोंग रचना पड़ा, उधार लाये हुए गहनों को यह कहकर छिपाना पड़ा कि धीरे-धीरे वह सेठों के रुपये देता जा रहा है, जालपा की अमीर सहेली रतन के रुपयों को लौटाने के लिए म्यूनिसिपैल्टी के रुपयों का एक प्रकार से गबन करना पड़ा, यद्यपि वह रुपये रतन को केवल भुलावे में डालने के लिए लाया जो जालपा के असावधानी के कारण एक समस्या बन गया और जिसका परिणाम यह हुआ कि न तो वह अपनी अमीरी की ही रक्षा कर सका, न तो वह परिवार को ही सुखी बना सका और न तो जालपा के रूप में यौवन की सुखद शीतल छाया में ही विश्राम कर सका, जिसे प्रसन्न करने के लिए उसने क्या-क्या नहीं किये।

3.2 विपत्तियों का शिकार

सभी विपत्तियाँ एक साथ ही आती हैं। टिकट के लिए रमानाथ ने अपनी अंगूठी एक कुली को बेच दी, पर रुपये लाने के बहाने वह ऐसा गया कि ट्रेन चली गई पर वह नहीं लौटा। बिना टिकट यात्रा करते रमानाथ को टी. टी. आई. की अभ्यस्त आँखों ने ताड़ लिया, जिससे वह पुन: झूठ बोलकर भी अपने को कानून की दृष्टि में निर्दोष न सिद्ध कर सका। फलत: रमानाथ को अगले स्टेशन पर उतर ही जाना पड़ता कि सहृदय वृद्ध खटिक देवीदीन ने उसके रुपये चुका दिये। कलकत्ता में रमानाथ इसी वृद्ध खटिक देवीदीन के यहाँ रहने लगा। देवी की वृद्धा पत्नी जग्गो कुछ तेज अवश्य थी, पर यह जानकर कि रमानाथ प्रयाग राज का एक ब्राह्मण है, अपने स्वभाव के प्रतिकूल भी चुप लगा जाया करती थी। रमानाथ एक प्रकार से झूठ बोलने का अभ्यासी हो गया था, यही कारण है कि उसने अपने को कायस्थ न बताकर देवी से ब्राह्मण बताया। जेल जाने के भय का भूत ऐसा रमानाथ पर सवार था कि एक दिन अपनी ही असामान्य भावभंगियों के कारण वह पुलिस वालों के चक्कर में आ गया। पुलिस वालों को एक डकैती के मामले में मुखबीर की तलाश थी जिससे रमानाथ को पाकर उन्होंने अपनी हारी हुई बाजी भी जीत लेनी चाही। दुर्बल रमानाथ पूर्णत: पुलिस वालों के प्रलोभन में आ गया और देवी तथा जालपा के सुझाव देने पर भी उसने मुखबिरी की।

3.3 केन्द्रीय पात्र

रमानाथ के चरित्र का विकास जिस ढंग से दिखाया गया है, उसमें कहीं-कहीं अतिरंजना इसलिए दिखलायी पड़ जाती है कि उपन्यासकार ने अपनी इच्छाओं के अनुसार उसे बहुत तोड़ा-मरोड़ा है। यह चरित्र उपन्यास की कथा का केन्द्र बिन्दु

है जिससे कथा के बदलते हुए हर एक पहलूओं का इस पर असर पड़ा है और हर मोड़ के साथ वह भी अपना रंग बदलता गया है। एक साधारण विद्यार्थी से लेकर जालपा के पति होने, म्युनिसपैलिटी में नौकरी करने तथा पुलिस के चंगुल में फँसने तक वह एक दुर्बल तथा लक्ष्यहीन चरित्र का व्यक्ति रहा। प्रारंभ में ही उसे कुछ ऐसे बुरे संगी मिल गये थे कि बुरे संस्कार उसमें घर करत गय, जिसके कारण वह कभी भी स्थिर चित्तवाला व्यक्ति नहीं बन पाया। उसके निश्चय शीघ्र ही किस प्रकार उसकी दुर्बलताओं के प्रभाव में आकर मटियामेट हो जाते हैं, यदि हम उन्हें जानना चाहें तो उपन्यास के किसी भी प्रसंग को उठाकर देख सकते हैं। अपनी दुर्बलता के कारण ही रमानाथ अपनी ही पत्नी के गहनों की चोरी करता है, उधार गहनों के पक्ष में न होते हुए भी दुकानदारों की दृष्टि में अमीर बाबू बनने के लिए काफी मूल्य के गहने खरीद लेता है, रतन के रुपयों के संबंध में झूठी बातें बनाता रहता है, पत्नी तक के रुपयों को मांगने में शर्माता है, कायस्थ होकर भी देवीदीन से ब्राह्मण बनता है, पुलिस के चंगुल में तो फंसता ही है, साथ ही मुखबीर बनकर झूठी गवाही देता है, प्रलोभनों के सामने देवीदीन तथा जालपा के लिए वचनों से मुकर जाता है तथा सुविधाओं के मिलने पर शराबी तथा वेश्यागामी बनने तक से भी नहीं चूकता। यह है रमानाथ की रीढ़हीनता। भले ही प्रेमचंद ने उसका सुधार कर देवीदीन के साथ सात्विक जीवन बिताने के लिए उसे खेतों तक पहुँचा दिया है। रमानाथ को इस अंतिम रूप में दिखलाकर उपन्यासकार ने युवकों में नौकरी के प्रति बढ़ती हुए आस्था, ग्रामीण जीवन के प्रति उत्पन्न होते उनके मन में उपेक्षा के भाव तथा शहरों के प्रति बढ़ते हुए आकर्षणों की निस्सारता प्रकट की है।

3.4 यथार्थवादी रमा

रमानाथ के अन्तर्द्वन्द्व तथा बहिर्द्वन्द्व का प्रेमचंद ने अच्छा चित्रण किया है। रमा यथार्थवादी चरित्र है और अपनी वर्गगत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है। वह जो कुछ नहीं है वही बनना चाहता है। इसीलिए सब दुर्घटना घटित होती है। वह घटनाओं के चक्रव्यूह में फँसता ही चला जाता है। वह इतना निकृष्ट नहीं है, किन्तु सामाजिक परिस्थितियों के दबाव के कारण वह बनता बहुत है और इसी बनने की आदत ने उसके गुणों को दबा-सा दिया है। वह सामान्य व्यक्ति है। अपने संकोच के कारण वह परिस्थितियों के जाल को सुलझा नहीं पाता। परिस्थितियों से बाधित होकर वह गबन तो कर सकता है, किन्तु आत्मगोपन की वृत्ति से बाज नहीं आ सकता। रमा के प्रति पाठक को क्रोध अथवा घृणा नहीं हो सकती है। वह उस पर केवल तरस खा सकता है।

3.5 मध्यवर्गीय मनोवृत्तियों का प्रतिनिधि

मध्यम वर्ग की मनोवृत्तियों का प्रतिनिधि है रमा। पाठक का क्रोध उस समाज के प्रति जाग्रत होता है, जिसके कारण आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्तियों को पोषण मिलता है। उसमें दूरदर्शिता और विचारों की स्थिरता नहीं है। गबन करने के बाद तो वह और भी पतनोन्मुख हो जाता है।

रमा आराम पसंद है। उसमें कष्ट सहिष्णुता नाम को भी नहीं है। विकारग्रस्त होते-होते उसकी बुद्धि भी पंगु हो गयी है। नैतिकता-अनैतिकता का भी उसे कोई विचार नहीं है। मानसिक दासता का वह प्रतिनिधि-सा बन जाता है। उसकी बुद्धि

पर भी उसका आरामतलब मन हावी हो जाता है। चाहे निरपराध आदमियों को फाँसी क्यों न हो जाय, मगर उसे सुखमय जीवन व्यतीत करने का अवसर मिल जाय तो उसे किसी की कुछ परवाह नहीं है। इस प्रकार परिस्थितियों के घात-प्रतिघात और रमा के अन्तर्द्वन्द्व से यह उपन्यास बहुत प्रभावोत्पादक हो गया है।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'गबन' के नायक का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. रमानाथ मध्यवर्गीय मनोवृत्तियों का शिकार बन गया है, प्रमाणित कीजिए।
3. रमा के चरित्र से पाठक को क्रोध नहीं आता, बल्कि उन परिस्थितियों के प्रति आता है, जो रमा का चरित्र निर्माण करती हैं। सिद्ध कीजिए।
4. रमा का व्यक्तित्व कुल मर्यादा के अहं से पीड़ित, एक आत्मप्रवंचित व्यक्ति का है, सिद्ध कीजिए।

कर्मभूमि

प्रेमचंद की औपन्यासिक संरचना और 'कर्मभूमि'

पाठ-संरचना

1.0 संरचना से तात्पर्य
1.1 पाश्चातय विचारकों के मत
1.2 दो श्रेणियाँ
1.3 कर्मभूमि की संरचना
1.4 संरचनागत वैशिष्ट्य
1.5 रचना का उद्देश्य
1.6 भाषा
1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 संरचना से तात्पर्य

उपन्यास और जनजीवन का रिश्ता गहरा है। इस रिश्ते की तलाश में प्रेमचन्द की औपन्यासिक संरचना पर विचार जरूरी है। उनके उपन्यासों का रूप-विधान आज पुराना लग सकता है, यह भी कहा जा सकता है कि यह समकालीन यथार्थ को अभिव्यक्त करने में अपनी सक्षमता खो रहा है। फिर भी यह स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि परम्परागत जासूसी, ऐय्यारी एवं रोमांस-प्रधान उपन्यास के पाठकों को छीनकर उन्हें अपना पाठक बनाने और उपन्यास को कविता के समानान्तर एक सम्मानप्रद साहित्यिक विधा का दर्जा प्रदान करने में औपन्यासिक संरचना के प्रति प्रेमचन्द के नये दृष्टिकोण की बहुत बड़ी भूमिका रही है। सत्य तो यह है कि "अपनी औपन्यासिक संरचना की विशेषताओं के कारण ही वह अपने युग के सामाजिक यथार्थ को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचा सके।"

उपन्यास की संरचना की खोज इसलिए आवश्यक प्रतीत होती है कि कला के बारे में कथाकार का दृष्टिकोण उसकी सृजन-प्रक्रिया, शैली एवं शिल्पगत संरचना स्पष्ट हो सके। कहना न होगा कि अपने युग के विराट राजनैतिक परिवर्त्तन के

परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द के उपन्यासों की संरचना का विकास राष्ट्रीय यथार्थवाद के विकास से जुड़ा हुआ है। ''उनके उपन्यास उस जातीय जीवन से निकले हैं, जिसमें एक समय संघर्ष और बेचैनी बहुत अधिक थी।''

1.1 पाश्चात्य विचारकों के मत

ई. एम. फार्स्टर, बेन. सी. बूथ, एडविन म्यूर जैसे कलावादी आलोचकों ने औपन्यासिक संरचना के सम्बन्ध में एक बड़ा कठोर तंत्र निर्धारित किया था। उन लोगों ने उपन्यास को सामाजिक दबाव और वर्ग चेतना से पृथक रखा था। कारण, उनका उद्देश्य व्यक्तिवादी उपन्यास को आलोचना शास्त्र बनाना था। पर्सी ल्युबक के उपन्यास 'सौंदर्यात्मक आनन्द' का स्रोत था तो एडविन म्यूर ने उसके उलट उपन्यास को केवल जीवन के दृष्टिकोण पर आधारित बतलाया है। जीवन की जिस पद्धति का चुनाव उपन्यासकार कर सकता है, अपनी रचना में भी वह उसी पद्धति के पालन की चेष्टा करता है। परन्तु, यह ध्यातव्य है कि उपन्यास में कोई वैसी पद्धति नहीं हो सकती, जैसी गलीचे की सलीकेदार बुनावट में होती है, न वैसा रिद्म (लय) हो सकता है, जैसा संगीत में होता है। पाल वैनरी एक आदर्श कला को संगीत जैसा देखना चाहता है। प्रेमचंद में इन दोनों का सर्वथा अभाव नजर आता है। जो नहीं है, उसे ढूँढ़ने के स्थान पर जो है उसके गुण-अवगुण का विश्लेषण करना अधिक उचित है। यदि फार्स्टर के विचार को आधार बनाया जाय तो प्रेमचन्द की औपन्यासिक संरचना उससे सर्वथा भिन्न दिखायी देती है। फार्स्टर जटिल मानवीय जीवन की अभिव्यक्ति स्वतंत्र चरित्रों के माध्यम से करना चाहता है। कारण, वह कथा और दृष्टिकोण को मुक्त चरित्र के विकास में बाधक समझता है।

कथा एक सामाजिक अन्तर्वस्तु है, वह मनुष्य के सामाजिक जीवन से पैदा होती है। कथा के बल पर ही औपन्यासिक चरित्र में विकास घटित होता है। इसलिए प्रेमचन्द्र ने चरित्र के विकास को उपन्यास का विषय बनाने की प्रक्रिया में कथा पर भी पूरा ध्यान दिया। उनके उपन्यास में हम कथा का ह्रास नहीं पाते। उनकी कथा घटना-वैचित्र्य पर आधारित न होकर, उन सामाजिक अनुभवों के सहज विकास पर आधारित है, जिससे चरित्र को राह मिलती है। कथा चरित्र के विकास में सहायक होती है।

1.2 दो श्रेणियाँ

प्रेमचंद के उपन्यासों को दो श्रेणियों में बाँटा जाता है। पहली श्रेणी में 'वरदान', 'सेवासदन', 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा', और 'गबन' हैं, जो एकात्मक कथा संयोजन के अन्तर्गत आते हैं। 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि', और 'गोदान' जैसे उपन्यास दोहरे कथा संयोजन के अन्तर्गत आते हैं। यह दूसरी बात है कि आयोजकों ने शिल्प और वस्तु संगठन की दृष्टि से एकात्मक कथा बंध वाले उपन्यास को श्रेष्ठ बतलाया है और दो या दो से अधिक कथाओं के ढाँचे पर आधारित उपन्यास को शिल्प की दृष्टि से दुर्बल। इसीजिए गोदान ऐसे श्रेष्ठ उपन्यास को भी संरचना की दृष्टि से दोषयुक्त बताया गया। लेकिन ऐसा इसलिए हुआ कि आलोचकों ने प्रेमचन्द की औपन्यासिक संरचना को उनकी यथार्थवादी दृष्टि के विकास के संदर्भ में नहीं देखा। प्रेमचन्द ने अपने जिन उपन्यासों में दो-तीन कथाओं एवं कई चरित्रों को प्रस्तुत किया है उन उपन्यासों में उनका लक्ष्य पूरे भारतीय समाज का चित्र खींचना था। दूसरे शब्दों में यह उपन्यास को बुर्जुआ एकाधिपत्य से मुक्त करने की चेष्टा थी। एकात्मक कथा-बोध वाले उपन्यासों में सिर्फ मध्यमवर्गीय जीवन के अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति हुई, जो निरन्तर विकसित होती गई और गोदान तक आते-आते प्रेमचन्द की औपन्यासिक संरचना का पूर्ववर्ती मध्यवर्गीय बिंब चकनाचूर हो गया और यह सब होता है शोषित-उत्पीड़ित जनता के यथार्थ की चोट से। उन उपन्यासों में नये राष्ट्रीय और सामाजिक दायित्व के

साथ-साथ मध्यवर्ग की भूमिका तो उभरी ही है। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि इनमें निम्नवर्ग को नायकत्व मिला है। साधारण चरित्र अपनी विलक्षण भूमिका में आते हैं।

1.3 'कर्मभूमि' की संरचना

'कर्मभूमि' प्रेमचन्द की यथार्थवादी औपन्यासिक दृष्टि को पुनर्प्रतिष्ठित करने में सहायक होता है। उपन्यास में धर्म के ठेकेदार, महंत, अमीर और अंग्रेज शासक के अत्याचारों के खिलाफ दलित-शोषित-वर्ग की जनता लगातार संघर्ष करती है। पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था पर आक्रमण के साथ उपन्यास प्रारंभ होता है, ''हमारे स्कूल और कॉलेजों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है, शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती। .....कचहरी में पैसे का राज है, हमारे स्कूलों में भी पैसे का राज है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफ के पुल बाँधे जाते हैं। यदि ऐसे विद्यालयों से पैसे पर जान देने वाले, पैसों के लिए गरीबों का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेच देने वाले छात्र निकलते हैं तो क्या आश्चर्य है? अमरकान्त, सलीम और डॉ० शान्ति कुमार इसी शिक्षा-प्रणाली से निकले थे। एक ने अपना जीवन राष्ट्रीय चेतना के प्रसार ओर शोषितों के शान्तिपूर्ण मुक्ति-संग्राम में लगाया, दूसरा, अफसर बनकर साम्राज्यवादी दमन-दंड का ऊर्जा बन गया, तीसरा, उसी व्यवस्था में पढ़ाते हुए जाति-सेवा का ऊपरी राज करता है। हर घर एक अमीर विधवा रेणुका देवी के पैसे के आगे झुक गया। बाद में सलीम के दियारों में परिवर्तन आया और उसने जुल्म करनेवाले सिपाहियों को रोकने की चेष्टा की। डा० शान्ति उधर जाति-सेवा के दायरे से बाहर निकलकर व्यापक जन-संघर्ष से जुड़े। प्रभुता की लोभी सुखदा और व्यापारी समरकान्त ने भी परिस्थितियों में पड़कर जन-आन्दोलन का साथ दिया। वे विभिन्न राहों से चलकर एक ही जेल में गिरफ्तार होकर आये, एक ही साम्राज्यवादी दमन तंत्र के भीतर। सभी मानवीय जीवन के एक नये उद्देश्य से आलोकित थे। यह उद्देश्य था राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक आर्थिक बराबरी का। समरकान्त की बेटी नैना ने तो अपने क्रूर अमीर पति से विद्रोह करके आहुति तक दे दी।

सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन में नयी शिक्षा पद्धति पाये युवकों की क्या भूमिका हो सकती है, वे किस प्रकार कहीं कहीं सर्वथा नये कर्ममय पथ पर बढ़ सकते हैं, यही प्रेमचंद ने दिखलाया है। आरम्भ से अंत तक उपन्यास में एक अन्विति है जिससे शिक्षा-पद्धति की तीखी आलोचना का अभिप्राय भी स्पष्ट हो जाता है। यह आलोचना पूरी जीवन-व्यवस्था की आलोचना में विकसित हो जाती है। शिक्षा की वास्तविक सार्थकता इसी संदर्भ में है कि वह शोषित जनता के जीवन को खड़ा करने में सहायक हो। समाज का शोषक-वर्ग नहीं चाहता कि वह (शोषित) जनता पढ़-लिखकर इतनी समझदार बन जाये कि खेत में काम करने के बाद अपनी मेहनत का हिसाब जोड़ सके, महाजन के मूल-सूद का उचित रूप का पता लगा सके, बंधुआ जिंदगी से मुक्ति का उपाय सोच सके, कुप्रथाओं और बुरे सेवन से छुटकारा पा सके। निरक्षर व्यक्ति सामाजिक रूप से निर्बल भी होते हैं, यही सोचकर प्रेमचन्द ने अमरकान्त को चमारों की बस्ती में भेजकर दलित बच्चों को पढ़ाते दिखाया है। इसके चलते गाँव में जागरूकता पैदा होती है, नये समाज की उत्कंठा जागती है और लोग संगठित होकर महंथ के खिलाफ आन्दोलन छेड़ देते हैं। यहाँ प्रेमचन्द पश्चिमी शिक्षा और जनवादी शिक्षा के उद्देश्यों का फर्क स्पष्ट किया है।

प्रेमचन्द गाँव की संस्कृति को उभारना चाहते हैं। वहाँ के जीवन की पवित्रता और मार्मिकता को प्रकट करना चाहते हैं। इसीलिए गाँव के उत्सवों में नाच-गाना और भोज का चित्रण करते हैं। यहाँ ग्रामीणों द्वारा निश्छल और उन्मुक्त भाव से नाचने का आग्रह पश्चिमी शिक्षा में पढ़ा-लिखा अमरकान्त स्वीकारने में हिचक जाता है। प्रेमचन्द का उद्देश्य यहाँ पश्चिमी

शिक्षा की घातकता को उजागर करना है। इस तरह 'कर्मभूमि' की औपन्यासिक संरचना शिक्षा-प्रणाली के विश्लेषण के माध्यम से पूरे समाज का चरित्र खोलती है।

'कर्णभूमि' में कथा दो स्तरों पर चलती है। एक शहर में, दूसरी गाँव में। दोनों कथाओं में भारतीय समाज में जनान्दोलन का व्यापक चित्र उपस्थित है। इसमें गाँव और शहर की दो अधूरी कथाएँ नहीं, समाज के उतपीड़ित लोगों की एक पूरी कथा है। कथाकार ने समाज के सभी वर्गों को मनोसामाजिक दशा यथार्थवादी स्तर पर प्रकट की है। सुखदा और अपरकान्त का एक दूसरे से अलग होना और पुन: मिलना एवं बिलगाव की स्थिति में अमर का सकीना से प्रेम का एक मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित किया गया है। प्रेमचंद अंतत: पति-पत्नी को एक दूसरे से मिलाते हैं, कारण, सुखदा बदल चुकी होती है। उपन्यास में अपेक्षाकृत अधिक चरित्रों के जीवन में परिवर्तन दिखाया गया है। समरकान्त, सलीम, सुखदा, शान्तिकुमार सभी बदल जाते हैं और समाज में नयी भूमिका की पहचान करते हैं। अगर समाज में बदलाव की राजनीति चल रही हो तो व्यक्ति के जीवन में भी परिवर्तन आता है। इसे हृदय परिवर्तन के चालू मुहावरे से विश्लेषित नहीं किया जा सकता। प्रेमचन्द चारित्रिक परिवर्त्तन की पृष्ठभूमि में अगर सामाजिक राजनैतिक आधार रखने में अक्षम होते, तब माना जा सकता था कि उनके चरित्रों का हृदय-परिवर्तन चालू ढंग से हुआ। लेकिन ऐसी बात नहीं है। परिस्थितियों से टकराकर मनुष्य के विचारों में परिवर्तन आता है, क्योंकि बुराई व्यक्ति में नहीं, सामाजिक ढाँचे में है। इस ढाँचे पर जन-आन्दोलन की चोट से मनुष्य में एक नया राजनैतिक विश्वास उत्पन्न होता है। वह बुराइयों को छोड़ने तथा अच्छाइयों को अपनाने के लिए स्वाभाविक तौर पर प्रवृत्त होता है। प्रेमचन्द ने गाँव के चमारों के जीवन से भी दिखाया है कि किस प्रकार एक नई चेतना के संपर्क में आकर वे मरी गाय का मांस खाना छोड़ देते हैं। बच्चे नहाने लगते हैं और लोग सफाई से रहने लगते हैं। सोये गाँव जाग उठते हैं।

1.4 संरचनागत वैशिष्ट्य

'कर्मभूमि' की औपन्यासिक संरचना की परिपक्वता इसमें निहित है कि बिना तीव्र घटनात्मकता के भी परिस्थिति और चरित्र के बीच टकराहट से कथा का स्वाभाविक विकास होता है। पूर्ववर्त्ती उपन्यासों में मिलनेवाली कमजोरी का कर्मभूमि में लेश मात्र भी आभास नहीं है। उपन्यास पूरा कसा हुआ है; क्योंकि युगीन परिस्थितियों और जीवन-संघर्षों पर प्रेमचंद की दृष्टि लगातार टिकी हुई थी। उन्होंने राजनैतिक आर्थिक समस्याओं के अलावा मनुष्य के आंतरिक पक्ष को भी उठाया और इनका संवेदनात्मक चित्र खींचा। प्रेमचन्द दुनिया के ऐसे बहुत कम कथाकारों में हैं, जिन्हें बहुत से चरित्रों को भीतर से जानने का गौरव प्राप्त है।

इन्द्रनाथ मदान ने 'कर्मभूमि' के संबंध में लिखा है—"प्रेमचन्द वस्तु-संगठन और चरित्र-चित्रण की प्राचीन प्रणाली से छुटंकारा नहीं पा सके हैं। वह अभी तक सामाजिक आलोचना को इतना अधिक अपनाये हुए हैं कि प्रचार की खातिर कला की बलि चढ़ा देते हैं।" इसके जवाब में प्रेमचन्द का यह कथन उद्धृत कर देना पर्याप्त है—"क्यों न कुशल साहित्यकार कोई विचार-प्रधान रचना भी इतनी सुन्दरता से करे, जिसमें मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष कर नियत रहे? 'कला के लिए कला' का स्वरूप वह होता है, जब देश संपन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनैतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है, दुख भरी दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखायी देते हैं। विपत्ति का करुण क्रंदन सुनायी पड़ता है तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय दहल न उठे?" "प्रेमचंद से पूर्व साहित्यिक उपन्यास की कोई सबल परम्परा नहीं थी। उन्होंने एक नयी परम्परा की नींवें रखी और उपन्यास को 'मानव चरित्र का चित्र'

कहा। उन्होंने अपने प्रिय चरित्र के अन्तर्विरोधों को उभारने में कभी संकोच नहीं किया। उनके चरित्र इसीलिए संवेदना के धरातल पर खरे उतरते हैं। प्रेमचंद जानते थे कि अच्छे चरित्र में भी अन्तर्विरोध संभव है। उनमें भटकाव आ सकता है क्योंकि इनका आधार हमारे समाज में है। इसे रोकना उनकी दृष्टि में बेईमानी होगी।

कुल मिलाकार कहा जा सकता है कि किसी भी साहित्यिक रूप का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हो सकता। उसका आधार सामाजिक जीवन में रहता है। जीवन के प्रति जैसा दृष्टिकोण होगा, साहित्यिक रूप भी वैसा ही होगा। औपन्यासिक संरचना के स्तर पर प्रेमचंद को भी अनेक समस्याओं को झेलना पड़ा था। ये समस्याएं सामाजिक जीवन के यथार्थ का सामना करने के कारण उत्पन्न हुई थीं। सामाजिक यथार्थ में जैसे-जैसे विराम आता गया, औपन्यासिक संरचना में भी विराम आता गया।

1.5 रचना का उद्देश्य

प्रत्येक कृति की रचना के पीछे उसके रचयिता का एक निश्चित उद्देश्य होता है। और यह उद्देश्य इतिहास के मनोभावों से प्रेरित होता है। साहित्य के मनोभाव उसके वैयक्तिक स्तर के स्वर-बोध, वाह्य वातावरण, पूर्व धारणाओं तथा स्वानुभूत अनुभवों पर आधृत होता है। 'कर्मभूमि' की रचना के पीछे भी प्रेमचंद का एक निहित उद्देश्य है। वास्तव में प्रेमचन्द का उद्देश्य तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों का चित्रण करने के साथ ही वर्ग-वैषम्य पूंजीपतियों के अत्याचारों से आक्रांत गरीब जनता का चित्रण करता रहता है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचन्द ने अपने पात्रों के माध्यम से समाज में फैली हुई दुर्गन्ध को दूर करने तथा आन्दोलनादि के द्वारा शोषितों, वंचितों, दलितों में जागरण पैदा करने की कोशिश की है। चूँकि प्रेमचन्द गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक थे इसलिए उनके इस उद्देश्य की पूर्ति में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उभर कर सामने आया है।

वास्तव में प्रेमचन्द साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन भर नहीं मानते थे। वे साहित्य को इससे कहीं ऊँचा समझते थे। उन्हीं के शब्दों में--''वह हमारा पथप्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है।'' उन्होंने 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त की भी अनदेखी की और कहा कि--'कला कला के लिए' का समय वह होता है जब देश संपन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनैतिक और सामाजिक बन्धनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखायी देते हैं, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनायी देता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे? कर्मभूमि का प्रकाशन 1932 में हुआ था। प्रेमचंद ने इसकी रचना से पूर्व 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक निबंध में जो कुछ लिखा उससे उनकी विचारधारा और भी स्पष्ट होती है। सत्य है कि चौथा दशक भारतीय इतिहास का संक्रमण काल रहा है। स्वाधीनता आन्दोलन शहरों से होकर गाँवों तक फैल रहा था। धनी और बुद्धिजीवी तो थे ही ग्रामीण जनता जो शोषित, दलित और वंचित थी, उन्हें भी साथ लेकर चलने की जरूरत थी। जो काम राजनीति के माध्यम से गाँधी जी कर रहे थे, साहित्य के माध्यम से वही काम प्रेमचन्द कर रहे थे। जब तक सामन्ती एवं पूँजीवादी शोषण से मुक्ति नहीं मिलती, तब तक भारतीय जनता का उद्धार संभव नहीं था। इससे मुक्ति के बाद ही वर्गहीन समाज की स्थापना संभव हो सकती है। एक ऐसा समाज जो समानता पर आधारित हो और जिसमें सभी सुखी हों। 'कर्मभूमि' में इसी उद्देश्य की पूर्ति का प्रयास है। वास्तव में इसमें कर्म योग का संदेश है और जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण एक योद्धा की भाँति प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास का कथानक दो स्तरों पर जुड़ा है। दोनों स्तरों पर आन्दोलन होते हैं जिसका मुख्य उद्देश्य है क्रान्ति यह क्रान्ति। गाँधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन से प्रभावित है। अन्ततः सभी पात्र आन्दोलन करते हुए जेल चले जाते हैं। कर्मभूमि में क्रान्ति के व्यापक चित्रण के साथ-साथ तत्कालीन भारतीय रूपी भारतीय सामाजिक एवं सामाजिक समस्याओं को भी समेट लेने का प्रयास किया गया है। निर्धनों के मकान की समस्या, अछूतोद्धार की समस्या

एवं अछूतों का मंदिर प्रवेश, विदेशियों द्वारा भारतीय नारीत्व की मर्यादा एवं सतीत्व की रक्षा का प्रश्न, पुनर्जागरण एवं नवीन चेतना, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का दमन चक्र तथा धार्मिक पाखंड एवं राष्ट्रसेवकों की पारिवारिक समस्याएँ इस उपन्यास में यथार्थवादी ढंग से चित्रित हुई हैं। इन समस्याओं का चित्रण इतनी सत्यानुभूति से प्रेरित है कि तत्कालीन राष्ट्रीय सत्याग्रह आन्दोलन आँखों के सामने सजीव हो उठता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास में यथार्थवाद के साथ लेखक की समजवादी विचारधारा का समन्वय हुआ है, जो प्रगतिशीलता पर आधारित है। इस उपन्यास का संदेश है कि जिस समाज में गरीबों के लिए स्थान नहीं, वह उस घर की तरह है, जिसकी बुनियाद न हो। मानवता हमेशा कुचली नहीं जा सकती। समता जीवन का तत्व है, यही एक दशा है जो समाज को स्थिर रख सकती है। यह जागृति का युग है। जागृति अन्याय को सहन नही कर सकती। जिस राजनीतिक क्रान्ति को प्रेमचन्द ने चित्रित किया है उसकी अन्तिम परिणति वे इसी मूल उद्देश्य में चाहते थे। समान सामाजिक रूप विधान, वर्ग वैषम्य एवं शोषण से प्रभावित था। प्रेमचन्द इस से दुखी थे। वे ऐसी व्यवस्था चाहते थे जिससे पूर्ण समाजवाद की स्थापना हो सके, और परस्पर समानता एवं सहयोग की भावना का जन्म हो सके।

1.6 भाषा

भारतीयता जीवन की राजनैतिक-आर्थिक समस्याओं के प्रति प्रेमचन्द की जागरूकता जैसे-जैसे विकसित हुई, उनकी साहित्यिक भाषा न केवल जनभाषा के करीब पहुँचती गयी, बल्कि वह कथा के अधिकाधिक अनुरूप भी हुई। जिस दौर में छायावादी भाषा छायी हुई थी, एक नयी तरह की भाषा लेकर कथा क्षेत्र में उतरना और देवकीनन्दन खत्री के पाठकों को छीनकर उन्हें अपना बना लेना आसान काम न था। प्रेमचन्द ने समाज के यथार्थ को सादगीपूर्ण भाषा में व्यक्त किया, इसलिए पाठकों ने भी उनके साथ एक अद्‌भुत लगाव का अनुभव किया। वास्तव में भाषा भावों की वाहिका होती है। रचनाकार की रचना होती ही, उसके भावों के अनुरूप है, किन्तु उसका प्रत्यक्ष रूप भाषा के माध्यम से ही सामने आता है। प्रेमचन्द की 'कर्मभूमि' की भाषा हिन्दी है, पर उसमें जनसाधारण की बोलचाल की भाषा का रूप भरा हुआ है। यों प्रेमचन्द उर्दू के लेखक थे, उर्दू से वे हिन्दी में आये, इसलिए उनकी हन्दी में उर्दू का चित्रण स्वाभाविक रूप से परिलक्षित होता है। इसलिए 'कर्मभूमि' की भाषा जनभाषा भी है और साहित्यिक भी। मनोभावों की सरस अनुभूति कराने में वह अद्वितीय है। उसमें मनोविकारों को मूर्तरूप में खड़ा करने की क्षमता है, और है पूर्ण एवं प्रभावात्मक अभिव्यक्ति की शक्ति।

कर्मभूमि में भाषा अलंकृत नहीं है। वह अपने सरल, सुबोध और प्रवाह में एक सुन्दर जनभाषा का आदर्श स्थापित करती है। यों तो कर्मभूमि में हिन्दी और उर्दू शब्दों की प्रचुरता है, परन्तु साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग मिल जाता है। चूँकि कर्मभूमि का अधिकांश कथानक ग्राम्य जीवन को घेरे हुए है, अतः ग्राम्य अर्द्ध और तद्‌भव शब्दों की प्रचुरता है। पात्रानुकूल भाषा इसकी अन्यतम विशेषता है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रेमचन्द की भाषा में प्रखर आवाज है और इस आवाज में इतना गरूर इसलिए है कि उसका जनजीवन से गहरा संबंध है। छोटे वाक्य, बोलचाल के साधारण शब्द, गहरी बात और रोचकता प्रेमचन्द की भाषा की मुख्य विशेषता है। भाषा की मध्यवर्गीय मानसिकता से मुक्त रहने के कारण उनका साहित्य विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित नहीं है। न कहीं औपचारिकता का मजमा है और न कहीं भारीभरकम शब्दों का आतंक। गहरी और सच्ची बात आम आदमी की भाषा में ही कही जा सकती है, प्रेमचन्द का 'कर्मभूमि' उपन्यास इसका प्रमाण है।

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. औपन्यासिक संरचना से आप क्या समझते हैं? 'कर्मभूमि' की औपन्यासिक सरचना की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. संरचना की दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासों को कितनी श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है? 'कर्मभूमि' किस श्रेणी का उपन्यास है?
3. गोदान की तरह 'कर्मभूमि' में भी कथा दो स्तरों पर चलती है। एक गाँव के स्तर पर, दूसरी शहर के स्तर पर। कथा-संरचना की दृष्टि से ये कथाएँ एक दूसरी की पूरक हैं, विवेचना कीजिए।
4. 'कर्मभूमि' के रचनागत उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
5. 'कर्मभूमि' की भाषा पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

कर्मभूमि के प्रमुख पुरुष पात्रों का शील निरूपण

पाठ-संरचना

2.0 पाठ-परिचय
2.1 शील और चरित्र
2.2 अमरकांत
2.3 सलीम
2.4 समरकांत
2.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 पाठ-परिचय

उपन्यासों में मानव चरित्र का केन्द्रीय महत्व होता है। उपन्यास को प्रेमचन्द ने जब मानव का अध्ययन कहा था तब उनके ध्यान में चरित्र का यही केन्द्रीय महत्व था। प्रेमचन्द ने अपने कुछ निबन्धों में उपन्यास को एक ऐसी आधुनिक कथा विधा के रूप में देखा है, जिसका विकास ही मानवीय वास्तविकता और मानव व्यवहार के नये सम्बन्धों के बीच हुआ। जीवन कर्म योग और दान का यदि संश्लेषण है, तो लिखित रूप से चरित्र में कर्तृत्व, भोक्तृत्व और मातृत्व के संस्कार मिल जायेंगे। किंतु चरित्र का निर्णायक स्वरूप तो मनुष्य के भोगतत्व (भोक्तृत्व) से ही बनता है। चरित्र और शील की अवस्था अथवा प्रत्यावस्था को लक्षित कर रहा है। वहाँ केवल घटना कथाओं से काम नही चल सकता। समस्त रूपक और प्रतीक कथाएँ, इसलिए एकाँगी हो जाती हैं कि उनमें वास्तविक मनुष्य के भोक्ता रूप का विकास दिखाने के बजाय हम उसपर एक अर्थ आक्षेपित करते हैं। अर्थात् चरित्र के बिना उपन्यास कथा छाया बन जाता है। प्रसिद्ध समीक्षक रॉल फॉक्स ने अपनी पुस्तक 'लोकजीवन' और उपन्यास में लिखा है कि- ''उपन्यास का पलड़ा इस मायने में सदा भारी रहेगा कि वह मानव का कहीं अधिक पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता है, तथा उस महत्वपूर्ण आंतरिक जीवन की झाँकी दिखा सकता है जो कि मानव के निरे नाटकीय क्रियाशील रूप से भिन्न होती है।'' स्वयं प्रेमचन्द ने कथा आख्यान आदि की घटना प्रधानता से उत्पन्न जड़ता को तोड़कर अपने उपन्यासों की रचना की। प्रेमचन्द हिन्दी के पहले लेखक हैं, जिनके उपन्यास साहित्य में चरित्र की पर्याप्त

विविधता है और विस्तार भी। यदि प्रेमचन्द को हिन्दी कथा-साहित्य से निकाल दिया जाय, तो फिर जातीय चरित्र के नाम पर हमारे पास कुछ भी नही बच जायेगा।

कुछ आलोचक पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में प्रेमचन्द को कमजोर समझते हैं। इसकी पुष्टि के लिए वे प्रसाद जी के नारी पात्रों से प्रेमचन्द की तुलना भी करते हैं। इस बात को भुलाकर कि प्रसाद जी के जिन पात्रों से प्रेमचन्द के पात्रों की तुलना की जाती है, वे कथा के पात्र नहीं, नाट्य के पात्र हैं।

2.1 शील और चरित्र

चरित्र और शील का अंतरंग सम्बन्ध सिद्ध किया जाता है। वस्तुत: शील वह आधार है जिस पर मनुष्य का कर्म, भावबोध और समस्त ज्ञान निर्भर करता है। चरित्र की वास्तविकता शील से निर्मित होती है और शील से ही रूप बनता है। विश्व के लगभग सभी उपन्यासकारों की तरह प्रेमचन्द के पात्रों में भी न केवल चरित्रगत विविधता है, बल्कि शीलगत विविधता भी है। उनके जातीय इतिहास और व्यक्तिगत स्वरूप का जैसा निरूपण प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में मिलता है, वैसा किसी एक लेखक के साहित्य में मिलना प्राय: असंभव है। अगर 'कर्मभूमि' के अन्तर्गत आये पात्रों का ही शील निरूपण किया जाय तो उनकी नि:सर्गबद्धता, स्वलक्षणशीलता और स्वजीविता और परजीविता का एक बहुत ही वैविध्यपूर्ण तथा विकसित रूप प्राप्त हो जायगा। ये चरित्र न केवल भरे-पूरे हैं, बल्कि बहुत कुछ विकास की स्थिति में भी हैं। और इसी दृष्टि से उन्हें संभावनाशील कहना बिल्कुल ही उचित होगा। इन्हीं तथ्यों और सरणियों को ध्यान में रखकर हम प्रेमचन्द के कुछ पात्रों का अध्ययन शील-निरूपण करेंगे।

2.2 अमरकान्त

प्रेमचन्द ने लिखा है कि ''अमरकान्त का चरित्र का निर्माण पितृद्वेष के हाथों हुआ था। यह बात चूँकि स्वयं लेखक की टिप्पणी से आती है, इसलिए इसकी सार्थकता पर बहुत अधिक विवाद की गुंजाइश नहीं है। किसी भी स्वतंत्र और विकासशील चरित्र के लिए यह धारणा बहुत अधिक सकारात्मक नहीं मानी जायगी। किंतु अमरकान्त के चरित्र-विराम की प्रारंभिक अवस्था के लिए यह एक निष्कर्ष प्राप्त बात है।

चतुर्थ दशक भारतीय इतिहास और साहित्य के लिए गुणात्मक परिवर्त्तनों का दशक माना जाता है। इस दशक ने हिन्दी कथा साहित्य को कुछ अत्यन्त मौलिक कथा-नायक दिये हैं। उनमें अमरकान्त, डॉ० मेहता, गोबर, शेखर और बीजगुप्त (चित्रलेखा) विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। ये कथा चरित्र न केवल औपन्यासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि सामाजिक रूप से, सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। उपन्यास के प्रारंभ में अमरकान्त एक किशोर छात्र के रूप में सामने आता है, जो उम्र से तो युवक है, किंतु दीखता किशोरों जैसा है। दुबला-पतला, साँवला शरीर, मंझोला कद और निरीह आँखों वाले इस युवक की भीतरी दृढ़ता और इच्छाशक्ति के स्रोतों को प्रेमचन्द ने बड़ी सूक्ष्मता से उपस्थित किया है। व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक जीवन में अमरकान्त एक आहत और अभियोजन रहित व्यक्ति है। उसके सम्बन्ध पिता और पत्नी से सामान्य रूप से खराब हैं। पिता के प्रति उसके मन में गहरा असंतोष है जो कहीं न कहीं द्वेष के रूप में लक्षित होता है। पत्नी के प्रति उसका दृष्टिकोण कुछ दूसरा है। उसमें कहीं न कहीं ईर्ष्या और सचेत अवमानना का भाव भी निहित है।

परिवार और समाज के जिस आरंभिक वातावरण में इस कथानायक को प्रतिष्ठित किया गया है, वह वातवरण न केवल

विषय और अन्तर्विरोधी है। बल्कि स्वयं उसकी इच्छा और कर्म के लिए भी विरोधी है। इस वातावरण में उसे अपमान, घृणा, छोटे-छोटे स्वार्थ, असीमित लालसा और एक प्रकार की व्यक्तित्वहीनता दिखायी पड़ती है। यही कारण है कि वह एक विद्रोही युवक के रूप में हमारे सामने आता है। व्यक्तिगत परिस्थिति और चरित्र के इस सम्बन्ध को बहुत अधिक विस्तारित तो नहीं माना जा सकता, किंतु इसके शील में जो स्वलक्षणता है और व्यक्तित्व में जो आतमनिर्भरता है, उसका स्रोत इसी पृष्ठभूमि में है।

परिवार और समाज किसी व्यक्ति के जीवन में उतनी ही भूमिका सम्पन्न करता है जितनी भूमिका समाज की होती है। व्यक्तित्व के निर्माण और पोषण में परिवार समाज की भूमिका संभवत: और भी बड़ी होती है। इसलिए जब अमरकान्त अपने परिवार से लगभग टूट कर चमारों की बस्ती में जाकर रहने लगता है, तो उसके शील स्वरूप का एक नया पक्ष उद्घाटित होकर हमारे सामने आता है। प्रारंभिक अमरकान्त में और इस विकसित अमरकान्त में नैसर्गिक सम्बन्ध तो है किंतु नित्य सम्बन्ध नहीं है। वह दबा-दबा और व्यक्तित्व हीन युवक की तरह स्वलक्षणशील होकर और क्रांतिकारी जीवनशक्ति लेकर उभरनेवाला युवक बिल्कुल दूसरे जैसा लगता है। निश्चित रूप से अमरकान्त के चरित्र में क्रान्तिकारी छलांग के चिह्न मिलते हैं। उसके चरित्र के इस गुणात्मक परिवर्त्तन को अनेक रूपों में आलोचकों ने लक्षित किया। कुछ इसे हृदय परिवर्त्तनवादी, नाटकीय और कृत्रिम मानते हैं। दूसरी और ऐसे भी आलोचक हैं, जो उस परिवर्त्तन को इतना आकस्मिक और नाटकीय नहीं मानते। उनके अनुसार अमरकान्त के चरित्र की सारी संभावनायें इसी दिशा का संकेत करती हैं।

अमरकान्त के शील को लेकर शंका की जाती है। पत्नी से तनाव की स्थिति में वह सकीना और फिर मुन्नी के प्रति आकृष्ट होता है। प्रेमचन्द ने अपने किसी मध्यवर्गीय कथानायक को पहले यह सुविधा नहीं दी थी। विवाह के संस्थान के प्रति यह स्वाभाविक तिरस्कार का भाव न था। वे इसे एक ऐतिहासिक संदर्भ में देख रहे थे। अमरकान्त न तो सकीना से किसी बुरी नीयत से सम्बन्ध स्थापित करता है और न मुन्नी से। दोनों के प्रति उसकी उन्मुखता में एक प्रकार का खुलापन है। सकीना उसे सुखदा की तुलना में अधिक नि:सर्गबद्ध, सहज समर्पित और प्रेम के योग्य दिखायी देती है। हरेक के साथ दरिद्रता का जो सकरुण परिवेश है, वह सकीना के प्रति उसे भावानात्मक रूप से अर्जित करता है। मुन्नी के प्रति उसका आकर्षण इतना जटिल नहीं है। उसमें सहज कुंठा रहित साहचर्य है और शरीर भोग की दबी-छिपी इच्छा भी है। यद्यपि मुन्नी से इस प्रकार का कभी कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, किंतु इसकी भावना को जीतने में अमरकान्त को समय लगता है। लम्बे आत्मसंघर्ष के बाद वह मुन्नी की देहकामना से अपने को मुक्त करता है। और उसके आकर्षण से अपने शील की रक्षा करता है। इन स्थलों पर उसके भाव संघर्ष को प्रेमचन्द ने बड़ी सूक्ष्मता से उभारा है। शायद अमरकान्त पहला मध्यवर्गीय चरित्र है, जिससे प्रेमचन्द ने कोरे आदर्शवाद से स्वतंत्र रूप में विकसित किया है। मध्यवर्गीय यथार्थवादी कथानायकों में अमरकान्त का स्थान निश्चित रूप से बहुत ऊँचा है। इतना तो निर्विवाद है कि प्रेमचन्द का कलात्मक चिंतन निरंतर विकासशील रहा है और उनकी यथार्थता ऐतिहासिक प्रासंगिकता से अभिन्न है। वस्तुत: अमरकान्त के साथ प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में एक नया कथा-नायक का जन्म होता है, जो अपनी साधारणता में महत्त्वपूर्ण है। वह लघु मानव तो है लेकिन जिसकी इच्छा, क्रिया और ज्ञान शक्तियाँ लघु नहीं हैं। अमरकान्त प्रेमचन्द के अन्य मध्यवर्गीय पात्रों से कितना भिन्न है, उसकी समीक्षा तब पैदा होती है, जब हम उसकी तुलना 'गबन' के रमानाथ से करते हैं या विनय सेवक से करते हैं। रमानाथ की तरह वह केवल एक कमजोर पात्र नहीं है और न विनय सेवक की तरह एक कल्पित आदर्शवादी पात्र। प्रेमचन्द ने अमरकानत के रूप में एक व्यक्तिशील की उद्भावना की है। वह जातीय चरित्र या टाइप चरित्र न होकर एक व्यक्ति चरित्र है। वह अपने भोक्तृत्व में विशिष्ट है। चाहे कर्म और

ज्ञान में दूसरे के समान हो, किंतु भोक्ता के रूप में उसके स्वरक्षणशील को प्रेमचन्द ने क्रान्तिकारी छलांगों में चित्रित किया है।

चमारों की बस्ती में चमारों को शिक्षा देता हुआ अमरकान्त उस किशोर से कितना भिन्न है जो स्कूल की फीस न देने के कारण खिन्न, क्लान्त और अकेला दिखायी पड़ता है। उसके अविभाज्य चरित्र का एकरूप और स्वरूप वहाँ आता है जहाँ महन्थ के खिलाफ वह किसानों के संघर्ष को संगठित करता है, उसकी स्वरक्षणशीलता आक्रामक दिखाना प्रेमचन्द का उद्देश्य न था। अमरकान्त के चरित्र में कहीं भी आक्रामकता नहीं है। वह एक सतत विकासशील चरित्र है। प्रेमचन्द ने इस क्रमिक विकास को न केवल सोपानबद्ध किया है, बल्कि उसकी सरणियों का भी निर्देश दिया है।

सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में जो गहरा तनाव है, उसका प्रभाव भी अमरकानत के शील पर पड़ता है। पत्नी के प्रति उसका यह तनाव उसके भटकाव का कारण भी बन जाता है। उसे यथार्थवादी बना देता है। यह चरित्रनिपात उसके शील का बाहरी पक्ष है, अंतरँग पक्ष नहीं। सकीना और मुन्नी के प्रति उसका आकर्षण केवल एक क्षतिपूर्त्ति है, जो स्नेह स्वच्छंदता, भावना और उन्मेष उसे अपने परिवार में मिलना चाहिए था, वह उसे दूसरे रास्तों से प्राप्त करना पड़ता है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने उसके शील पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अमरकान्त प्रेमचन्द के कथानायकों में एक संक्रमणशील चरित्र है, जिसे यथार्थ भोक्ता के रूप में प्रेमचन्द ने बड़ी स्पष्टता से प्रस्तुत किया है। जिसके चरित्र को प्रेमचन्द ने समय और समाज के रिश्तों में देखा है या जिसकी भावनाओं को गहराई की दुनिया में ले जाने में सफल हुए हैं।

2.3 सलीम

सलीम गोरे रँग का लम्बा, छरहरा, शौकीन युवक है। उसके पिता हाफिज हलीम म्युनिसपैल्टी के अध्यक्ष हैं। वह अमरकान्त का मित्र है। साथ ही एक खेल प्रेमी भी। वह कविता भी करता है। कुल मिलाकर सलीम प्रारंभ में एक मौजी प्राणी है। उसके चरित्र की विशेषताओं को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत दर्शाया जा सकता है।

सच्चा मित्र : सलीम के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि वह अमरकान्त का सच्चा सहायक मित्र है। वह उसका सहपाठी है और सच्ची मैत्री के तहत अमरकान्त की फीस जरूरत पड़ने पर बिना कुछ कहे अपनी तरफ से जमा कर देता है।

शायर कवि : सलीम के चरित्र की दूसरी विशेषता उसके शायर होने में है। वह अपनी बात शायरी में कहता है।

स्पष्ट वक्ता : सलीम में जिन्दा दिली है और मजाक का कोई अवसर नहीं छोड़ता। संसार की चिंताओं से मुक्त रहता है। अवसर पर व्यंग्य की करारी चोट करता है पर अपने विषय में भी स्पष्ट वक्ता है।

उग्रनीति का पक्षपाती : वह साहसी है। हॉकी स्टिक लकर गोरों से लड़ पड़ता है। परिणाम की चिंता नहीं करता और ग्राम निवासियों की कायरता पर उन्हें फटकारता है। उसे सम्मान की चाहत है। तभी तो वह जब गोरों को मारता है तो उसकी दिली ख्वाहिश रहती है कि जनता को उसका जुलूस निकालकर सम्मान करना चाहिए। राजनीति में भी वह उग्रनीति का पक्षपाती है और परिणाम की चिंता किये बिना अपना काम किये जाता है। उसी के शब्दों में–"हम जितना ही डरते जाते हैं, उतना ही वे लोग शेर हो जाते हैं?